प्रवेशिका

शब्द शक्ति:

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने शब्दशक्ति की महत्ता बताते हुए कहा हैं कि, आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पद समूह वाक्य कहलाता है | आकांक्षा –अर्थ ज्ञान की पूर्ति की जिज्ञाषा, योग्यता-बुद्धिसम्मत सम्बन्ध, आसत्ति-अव्यवधान | शब्दों को कहने की तीन विधा निर्धारित की हुई है, जिसे हम अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना के रूप में जानते है. महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने मानस की रचना में शब्द शक्ति का वंदन सर्वप्रथम किया है, **वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ|** वाक्य शब्दों से ही बनते हैं और शब्द की शक्ति अपरिमित है.

अक्षर अक्षर का मिलन विन्दु सुन्दर शब्द विन्यास
अक्षर नही क्षर और न क्षर है सृष्टिज इतिहास
शब्द -शब्द की महिमा अति देती बुद्धि ज्ञान प्रकाश
शब्द प्रथम उपजे फिर उपजा समस्त जग विकास

प्रथम शब्द नाद प्रणव त्रिलोक, त्रिदेव का प्रतीत
प्रथम शब्द से ही पाया सप्त सुरों का ज्ञान रचित
तीन वेदों को फिर रचा गया था मिला शब्द उचित

नमन प्रथम मेरा विद्या ज्ञान शब्द को यथोचित

भक्ति लषित भाव निष्पादित परा वाणी संयमित
बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ता, से परा तक हो नियमित
नाभि के ब्रह्म नाद से उद्दित भावांजलि है रचित
हे वागेश्वरी ! वागर्थ हेतु सदा आर्जव स्रवित ||
(मेरी पुस्तक श्री राम पर लिखित से लिया गया)

कहने का अर्थ है वाक्य की सामर्थ्यता उसमे निहित शब्दों के भाष्य पर निर्धारित होती है एक वाक्य का एक शब्द पुरे शास्त्र को अपने में समावेशित कर लेता है | ऐसे माहन वाक्य को ही हम महा वाक्य कहते है|

भाष्य:
भाष्य कैसा हो कैसे लिखा जाय जिससे वह महावाक्य, महावाक्य प्रतीत हो, इसके लिए संक्षिप्त में भारत के ग्रंथों में परिभाषित भाष्य की परिभाषा को समझ लें हम |
संस्कृत साहित्य की परम्परा में उन ग्रन्थों को **भाष्य** (शाब्दिक अर्थ - व्याख्या के योग्य), कहते

हैं जो दूसरे ग्रन्थों के अर्थ की वृहद व्याख्या या टीका प्रस्तुत करते हैं। मुख्य रूप से सूत्र ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गये हैं।

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र, पदै: सुत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते, भाष्यं भाष्यविदो विदु: ॥

भाष्य, मोक्ष की प्राप्ति हेतु अविद्या (इग्नोरेंस) का नाश करने के साधन के रूप में जाने जाते हैं | पाणिनि के अष्टाध्यायी पर पतंजलि का व्याकरण महा भाष्य और ब्रह्म सूत्रों पर शंकर भाष्य आदि कुछ प्रसिद्द भाष्य हैं |
भाष्यकार में पराशरपुराण में भाष्यकार के पाँच कार्य गिनाये गये हैं-
पदच्छेदः पदार्थोक्तिर् विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपेषु समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम् ॥
भाष्य कई प्रकार के होते हैं - प्राथमिक, द्वितियक या तृतियक । जो भाष्य मूल ग्रन्थों की टीका करते हैं उन्हें प्राथमिक भाष्य कहते हैं। किसी ग्रन्थ का भाष्य लिखना एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण कार्य माना जाता है।
अपेक्षाकृत छोटी टीकाओं को **वाक्य** या **वृत्ति** कहते हैं। जो रचनायें भाष्यों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये रची गयीं हैं उन्हें **वार्तिक** कहते हैं।

प्रमुख भाष्यों की सूची
वेदों के भाष्य : सायण, मैक्समूलर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महर्षि अरबिन्दो
निघण्टु के भाष्य : यास्क द्वारा
पाणिनि के अष्टाध्यायी का भाष्य : पतंजलि का व्याकरणमहाभाष्य
ब्रह्मसूत्र के भाष्य : आदि शंकराचार्य का भाष्य; रामानुज का ब्रह्मसूत्र भाष्य; उद्योतकर की न्यायभाष्य पर टीका - न्यायवार्तिक; न्यायवार्तिक पर वाचस्पति मिश्र की टीका - न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका
उपनिषदों के भाष्य : शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहद् आरण्यक और श्वेताश्वतर- इन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य किया है
वाचस्पति मिश्र ने वैशेषिक दर्शन को छोड़कर बाकी पाँचो दर्शनों पर भाष्य लिखा है।
योगसूत्र के भाष्य : व्यास भाष्य, वाचस्पति मिश्र कृत तत्ववैशारदी, योग्वार्तिका, भोजवृत्ति
न्यायदर्शन के भाष्य: वात्स्यायनकृत न्यायभाष्य; वाचस्पति मिश्र का न्याय सूत्र
मीमांसा के भाष्य : शाबरभाष्य; शाबर भाष्य पर कुमारिल भट्ट की तीन वृत्तिग्रंथ हैं -श्लोकवार्तिक, तंत्रवार्तिक तथा टुप्टीका; वाचस्पति मिश्र कृत न्यायकणिका तथा तत्त्वविन्दु

वेदान्त के भाष्य : आदि शंकराचार्य का भाष्य ; वाचस्पति मिश्र का शंकरभाष्य पर टीका - भामती ; मंडन मिश्र के ब्रह्मसिद्धि पर वाचस्पति मिश्र की व्याख्या - ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा
वैशेषिकसूत्र के भाष्य :
सांख्यदर्शन के भाष्य : वाचस्पति मिश्र कृत सांख्यतत्त्वकौमुदी
गीता के भाष्य : आदि शंकराचार्य का भाष्य
महाभाष्य में जिन तीन चीजों की चर्चा हुई है वे हैं शिक्षा (phonology, including accent), व्याकरण (grammar and morphology) और निरुक्त (etymology) |
महत्त्व: महाभाष्य की महत्ता के अनेक कारण हैं। प्रथम तो उसकी **पांडित्यपूर्ण विशिष्ट व्याख्याशैली** ही है| विवादास्पद विषयों का पूर्वपक्ष उपस्थित करने के बाद उत्तरपक्ष उपस्थित किया है। शास्त्रार्थ प्रक्रिया में पूर्व और उत्तर पक्ष दोनों का व्यवहार चला आ रहा है। इसके अतिरिक्त आवश्यक होने पर उस पक्ष का भी उपन्यास किया है। **विषयप्रतिपादन** दूसरी विशेषता है। महाभाष्य की व्याख्या का क्रम तो अष्टाध्यायी और तदंतर्गत चार पादों और उनके सूत्रों का क्रम है। पर भाष्य के अपने क्रम में व्याख्या का नियोजन विभक्त है, जिसका अर्थ यह भी होता है कि एक "महाभाष्य" लिखा जाता रहा। साहित्यिक दृष्टि से महाभाष्य का गद्य अत्यन्त अकृत्रिम, मुहावरेदार, धाराप्रावाहिक और स्पष्टार्थबोध है।

भर्तृहरि ने इसपर टीका लिखी थी पर उसका अधिकांश अनुपलब्ध है। केय्यट की "प्रदीप" नामक टीका और नागोज उद्योत नाम से "प्रदीपटीका" प्रकाशित है। भट्टोजि दीक्षित ने अपने "शब्दकौस्तुभ" की रचना महाभाष्य के आधार पर की। संस्कृत व्याकरण में "मुनित्रय" को बहुत ही उच्च और प्रामाणिक पद दिया गया है। अष्टाध्यायी-कार पाणिनि, वार्त्तिककार कात्यायन और महाभाष्यकार पतंजलि - इन्हीं तीनों को "मुनित्रय" कहा गया है। व्याकरणशास्त्र के इतिहास में पाणिनीय व्याकरण की शाखा के अतिरिक्त पूर्व और परवर्ती अनेक व्याकरण शाखाएँ रही हैं। परंतु "मुनित्रय" से पोषित और समर्थित व्याकरण की पाणिनीय शाखा को जो प्रसिद्धि, मान्यता और लोकप्रियता प्राप्त हुई वह अन्य शाखाओं को नहीं मिल सकी - जिसका कारण महाभाष्य ही माना गया है। अष्टाध्यायी पर "कात्यायन" ने वार्त्तिकों की रचना द्वारा व्याकरणसिद्धांतों को अधिक पूर्ण और स्पष्ट बनाया। "पतंजलि" ने मुख्यत: वार्त्तिकों की व्याख्या को महाभाष्य द्वारा आगे बढ़ाया। अनेक स्थलों पर उन्होंने कात्यायनमत का प्रत्याख्यान और पाणिनिमत की मान्यता भी सिद्ध की है। कभी-कभी उन सूत्रों की भी विवेचना की है जो कात्यायन ने छोड़ दिए थे।इस महाभाष्य की रचनापीठिका का निर्देश करते

हुए वाक्यपदीयकार "भर्तृहरि" ने बताया है कि जब व्याकरण के पाठक संक्षेपरुचि और अल्पविद्यापरिग्रह बन गए, "संग्रह" ग्रंथ (जिसके कर्ता परंपरा के अनुसार व्याडि हैं) अस्त हो गया तब तीर्थदर्शी गुरु पतंजलि ने महाभाष्य की रचना की, जिसमें सभी न्यायबीजों का भी निबंधन है। इससे पता चलता है कि "पतंजलि" के पूर्व "संग्रह" नामक ग्रंथ में व्याकरण संबद्ध विवेचन अत्यंत विस्तृत था।

अतः जिन वैदिक सूत्रों का महाभाष्य लिखा गया हो वे निश्चित रूप से महावाक्य होंगे.

महावाक्य:

वेदों के चार महावाक्य...

1) **प्रज्ञानं ब्रह्म** - (ऐतेरिय उपनिषद) – ऋगवेद..प्रज्ञा रूप (उपाधिवाला) आत्मा ब्रह्म है [Consciousness is Brahman. Aitareya Upnishad Rigveda]

2) **अहम् ब्रह्मास्मि**-(वृहदारण्यक उपनिषद)–यजुर्वेद मैं ब्रह्महू.[I am Brahman Brahadaranyak Upnishad Yajurveda]

3) **तत्वमसि** [तत त्वम असि] - (छान्दोग्य उपनिषद)–सामवेद वह पूर्ण ब्रह्म तू है [You are That Chhandogya Upnishad Saamveda]

4) **अयं आत्म्ब्रह्म** - (मांडूक्य उपनिषद) - अथर्व-वेद यह (सर्वानुभाव सिद्ध अपरोक्ष)आत्मा

ब्रह्म है [is Self (Aatma) is Brahman Maandukya Upnishad Atharv-veda]
पहला महावाक्य ऋग्वेद के ऐतरेय उपनिषद में उद्धृत किया गया है, जिसे **'लक्षणा वाक्य'** भी कहा गया है। इसका संबंध ब्रह्म की चैतन्यता से है, क्योंकि इसमें ब्रह्म को चैतन्य रूप में रखा गया है। दूसरा महावाक्य यजुर्वेद के वृहदारण्यक उपनिषद से लिया गया है। इसकी खासियत यह है कि इसमें यह जताने की कोशिश की गई है कि हम सभी ब्रह्म (अहं ब्रह्मास्मि) हैं। इसे **'अनुभव वाक्य'** भी कहते हैं और इसके मूल स्वरूप को सिर्फ अनुभव के जरिए हासिल किया जा सकता है। तीसरा महावाक्य सामवेद के छांदोग्य उपनिषद से लिया गया है। इस महावाक्य 'तत त्वम असि' का मतलब यह है कि सिर्फ मैं ही ब्रह्म नहीं हूं, आप भी ब्रह्म है, बल्कि विश्व की हर वस्तु ही ब्रह्म है। इसे **उपदेश वाक्य** भी कहा जाता है। यह उपदेश वाक्य इसलिए भी कहा जाता है, क्योंकि इसके जरिए गुरु अपने शिष्यों में अहंकार को रोकते हैं। साथ ही, वह दूसरों के प्रति आदर की भावना को भी पैदा करते हैं। चौथा महावाक्य मुंडक उपनिषद से लिया गया है। 'अयामात्या ब्रह्म' महावाक्य के जरिए यह जताने की कोशिश हुई है कि आत्मा ही ब्रह्म है। दरअसल, यह अद्वैतवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित करता है और परम सत्य के बड़े स्वरूप

की जानकारी देता है, इसलिए इसे **'अनुसंधान वाक्य'** भी कहा जाता है।

वैदिक प्रबंधन :

हम चार धाम या मठों के बारे में जानते हैं, आदि शंकराचार्य ने वैदिक सनातन धर्म के उत्थान के लिए भारत भूमि के चार दिशाओं में चार धाम की स्थापना की एवं प्रशासनिक व्यवस्था भी की, उत्तर में बद्रीनाथ धाम जिसे ज्योर्तिमठ कहा गया, इसका सञ्चालन अर्थववेद द्वारा निश्चित किया गया एवं इसके संप्रदाय के लोगों को गिरी, पर्वत, सागर उपनाम से सज्जित किया गया. इस मठ का ब्रह्म वाक्य "अयात्मा ब्रह्मः" रखा गया, इसके प्रथम शंकराचार्य आचार्य तोटक हुए, वर्तमान में कृष्णबोधाश्रम जी शंकराचार्य हैं. पश्चिम में द्वारिकाधाम बसाया गया जिसे शारदा मठ कहा गया, इनके संप्रदाय को तीर्थ या आश्रम उपनाम दिया गया, एवं यह मठ सामवेद से संचालित है एवं इसका ब्रह्म वाक्य "तत्वमसि" है, इसके प्रथम शंकराचार्य हस्तामलक जी थे एवं वर्तमान में स्वरूपानंद सरस्वती जी हैं. पूर्व में जगन्नाथपुरी धाम बनाया गे जिसे गोवेर्धन मठ कहा जाता है, इसके सम्प्रदाय को अरण्य उपनाम से सज्जित किया गया, ऋग्वेद से संचालित यह मठ "प्रज्ञानं ब्रह्मः" ब्रह्म वाक्य को मानता है, इसके प्रथम शंकराचार्य पद्मपद थे एवं वर्तमान में निश्चलानंद

सरस्वती हैं. दक्षिण में रामेश्वरम में श्रृंगेरीमठ का निर्माण हुआ, यजुर्वेद से संचालित मठ का ब्रह्म वाक्य “अहम् ब्रह्मास्मि” है. प्रथम शंकराचार्य मंडान मिश्र थे एवं वर्तमान में भारती कृष्ण तीर्थ हैं.
वेद की इन चार घोषणाओं प्रज्ञानं ब्रह्मा – ब्रह्म ही परम चेतना है, अहम ब्रह्मास्मि- मैं ब्रह्म हूँ, तत्वमसि – वह तुम हो, अयं आत्म ब्रह्म – यह आत्मा ही ब्रह्म है. ये सारे महँ कथन भिन्न भिन्न हैं, और भिन्न भिन्न प्रकार से इनकी व्यख्या की गयी है किन्तु वे सब एक ही दिव्यता की ओर इशारा करते हैं, इनका विषय केवल और केवल दिव्यता है |

शंकराचार्य:

इन सबके पहले हम थोड़ी सी चर्चा करें , आदिशंकराचार्य के बारे में, जिस समय आदि शंकराचार्य का जन्म हुआ उस समय वैदिक दर्शन की क्या अवस्था थी यह छुपी नही, बौध धर्म, जैन धर्म उधर पाश्चात्य में क्रिस्चियन धर्म जोरों पर था

इस्लाम का उदय हो चूका था. स्वार्थवश तथाकथित ब्राहमण समाज (जन्मगत) वैदिक शास्त्रों पर कुंडली मार कर बैठ गए थे एवं अपने मन मुताबिक अर्थ एवं भाष्य कर रहे थे इसमें इन्होने सबसे ज्यादा दुरपयोग किया तो वह शास्त्र था मनुस्मृति | ऐसे में शंकराचार्य का जन्म लेना भारत भूमि पर और उस मृतप्राय दर्शन को एक नयी ऊर्जा दे, पुनर्जीवित करना ही उनका उद्देश्य रह गया था | संक्षिप्त जीवन में उन्होंने वेदों को ही नही सनातन धर्म के सभी स्तंभों को शक्तिशाली बनाया बल्कि एक नयी उर्जा दी | सही मायने में मैं अगर कहूँ की पुराणों में वर्णित नौवा अवतार बुद्ध न होकर आदिशंकर थे तो कोई अतिशियोक्ति नहीं होगी | मेरी पुस्तक वैदिक सनातन धर्म से इनका संक्षिप्त परिचय उद्धृत कर रहा हूँ |

जब धर्म का धर्म की संस्कृति का दोहन होने लगा, सनातन संस्कृति एवं उसके ज्ञान को गलत तरीके से स्वयम्भू आचार्यों ने परिभाषित करना आरंभ किया तब दक्षिण भारत में मलाबार क्षेत्र में तुंगभद्रा नदी के किनारे श्रृंगभेटी शंकराचार्य का जन्म विक्रम संवत 788 को वैशाख शुक्ल दशमी को में हुआ | 16 वर्ष की अल्पायु में चारों वेद, वेदांग, दर्शन, पुराण आदि से साक्षात्कार इन्होने कर लिया | कई ग्रन्थकारों एवं इतिहास कारों ने उनका जन्म ईसा से ५०९ वर्ष पूर्व माना है, यह चारों धाम पर लिखे शिलालेखों पर उधृत युधिष्ठर युग की गणना से है, परन्तु चूँकि

उनका शस्त्रार्थ मंडन मिश्र से बताया जाता है अतः संवत ७८८ उचित जान पड़ता है क्यूंकि वे भी इस काल में हुए बताये जाते हैं. गूगल से उद्धृत:

(आदि शंकराचार्य

प्रमुख हिन्दू धर्मशास्त्री और वेदांत के प्रणेता शिवावतार श्रीमज्जगदगुरु आदि शंकराचार्य अद्वैत वेदांत के प्रणेता थे। उनके विचारोपदेश आत्मा और परमात्मा की एकरूपता पर आधारित हैं जिसके अनुसार परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों में रहता है। स्मार्त संप्रदाय में आदि शंकराचार्य को शिव का अवतार माना जाता है। इन्होंने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छान्दोग्योपनिषद् पर भाष्य लिखा। वेदों में लिखे ज्ञान को एकमात्र ईश्वर को संबोधित समझा और उसका प्रचार तथा वार्ता पूरे भारत में की। उस समय वेदों की समझ के बारे में मतभेद होने पर उत्पन्न चार्वाक, जैन और बौद्धमतों को शास्त्रार्थों द्वारा खण्डित किया और भारत में चार कोनों पर ज्योति, गोवर्धन, श्रृंगेरी एवं द्वारिका आदि चार मठों की स्थापना की।

आदि शंकर

शिष्यों के मध्य आदिगुरु शंकराचार्य, राजा रवि वर्मा द्वारा (1904) में चित्रित जन्म शंकर 509 ई॰पू॰, कलाड़ी, चेर साम्राज्यवर्तमान में केरल, भारत, मृत्यु 476ई॰पू (उम्र 32) केदारनाथ, पाल साम्राज्यवर्तमान

में उत्तराखंड, भारत,,गुरु/शिक्षक गोविंद भगवत्पाद जीदर्शन अद्वैत वेदांतखिताब/सम्मानशिवावतार, आदिगुरु, श्रीमज्जगदगुरु, धर्मचक्रप्रवर्तककलियुग के प्रथम चरण में विलुप्त तथा विकृत वैदिक ज्ञानविज्ञान को उदभासित और विशुद्ध कर वैदिक वांगमय को दार्शनिक ,व्यावहारिक , वैज्ञानिक धरातल)

बालक शंकराचार्य असामान्य मेधावी थे । शंकर का वरदहस्त उन्हें था तो उनकी जिव्हा में सरस्वती विराजमान थी । तीन वर्ष की उम्र में इनके पिता शिवगुरु का निधन हो गया तब माता आर्याम्बा ने इनका पालन पोषण किया । विपरीत परिस्थितियों के कारण बालक शंकर का बचपन संघर्ष में बीता । बचपन में यज्ञोपवीत के उपरांत गुरु घर में पढ़ने गए । इसी समय धर्म के प्रति गहरी आस्था उन्हें संन्यास लेने की ओर झुकाने लगी लेकिन माता इस बात की अनुमति नहीं दे रही थी । बालक शंकर के संन्यास लेने की अनुमति को लेकर एक कथा प्रचलित है । कहते हैं कि एक दिन बालक शंकर माता के साथ नदी में स्नान करने गए । वहाँ एक मगर ने इनका पाँव पकड़ लिया । पानी गले तक आ गया और शंकर के जीवित बचने की आशा जाती रही । तब शंकर ने माता से कहा 'यदि तुम संन्यास लेने की अनुमति दो तो शायद मुझे जीवन दान मिल जाए । स्थिति को भाँपकर माता ने इसकी स्वीकृति दे दी तब मगर ने उनके पाँव छोड़े । इस समय

बालक शंकर की उम्र केवल आठ वर्ष थी । अब वे गुरु की तलाश में निकल पड़े ।'
चलते-चलते शंकर मध्यप्रदेश के ओंकारेश्वर पहुँचे जहाँ उन्हें गुरु गोविन्द भगवताप्रसाद भट्ट मिलें । गुरुदीक्षा के बाद इस किशोर संन्यासी ने पुण्यभूमि भारत की पदयात्रा की । अंत में वाराणासी काशी-विश्वनाथ की पवित्र नगरी में एक धर्म सभा शास्त्रार्थ कर वैदिक धर्म की स्थापना की ।
राष्ट्रीय एकात्मता की स्थापना के लिए जगतगुरु शंकराचार्य ने देश के चारों कोनों पर चार धाम तथा द्वादश ज्योतिर्लिंगों की स्थापना की । चार धामों में हिमालय पर बद्रीनाथ, समुद्र किनारे जगन्नाथपुरी, रामेश्वर तथा द्वारिकापुरी स्थापित किए । इन चारों धामों के साथ चार पीठ स्थापित किए । ये चार पीठ हैं ज्योतिपीठ, गोवर्धनपीठ, शारदा पीठ और श्रृंगेरी पीठ ।
आज भी इन पीठों में शंकराचार्य की परंपरा चली आ रही है। काँची में यद्यपि पहली पीठ स्थापित की थी परंतु श्रृंगेरी पीठ अधिक प्रसिद्ध है । शंकराचार्य के हाथों उपनिषद, नवनीत बन गए वहीं उनका चिंतन भारतीय संस्कृति की एकता के लिए एक सूत्र बन गया । देश को एकता के लिए सूत्र में पिरोने वाले इस संत का 32 वर्ष की उम्र में अवसान हो गया । आदि शंकराचार्य से पहचाने जाने वाले सिद्ध पुरुष ने सनातन धर्म की कुरीतियों एवं ग्रंथों के दुरूपयोग को रोकने के लिए ग्रंथों का भाष्य सरल भाषा में किया,

यह गुरु शिष्य की परंपरा आज भी चली आ रही है, इस तरह देश में स्थापित चार पीठ के पीठाधीश आज भी सनातन परंपरा के सर्वोच्च धर्म गुरु माने जाते हैं|

ब्रह्म:

उपरोक्त चार महावाक्यों में तीन वाक्यों में ब्रह्म शब्द का उपयोग हुआ है, आखिर यह ब्रह्म शब्द है क्या? बहुत ग्रंथों को टटोला, देखा, पढ़ा, भिन्न भिन्न विवरण मिला संस्कृत में ब्रह्म को ब्रह्मन कहते हैं,
हिन्दू (वेद परम्परा, वेदान्त और उपनिषद) दर्शन में इस सारे विश्व का परम सत्य है और जगत का सार है । वो **दुनिया की आत्मा** है । वो विश्व का कारण है, जिससे विश्व की उत्पत्ति होती है, जिसमें विश्व आधारित होता है और अन्त मे जिसमें विलीन हो जाता है । वो एक और अद्वितीय है । वो स्वयं ही परमज्ञान है, और प्रकाश-स्त्रोत की तरह रोशन है । वो निराकार, अनन्त, नित्य और शाश्वत है । ब्रह्म सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है । **ब्रम्ह** हिन्दी में ब्रह्म का ग़लत उच्चारण और लिखावट है ।
परब्रह्म या परम-ब्रह्म ब्रह्म का वो रूप है, जो निर्गुण और असीम है । "नेति-नेति" करके इसके गुणों का खण्डन किया गया है, पर ये असल मे अनन्त सत्य, अनन्त चित और अनन्त आनन्द है

। अद्वैत वेदान्तमें उसे ही परमात्मा कहा गया है, ब्रह् ही सत्य है, बाकि सब मिथ्या है। ***'ब्रह्म सत्यम जगन मिथ्या,जिवो ब्रम्हैव ना परः***
वह ब्रह्म ही जगत का नियन्ता है।
अपरब्रह्म ब्रह्म का वो रूप है, जिसमें अनन्त शुभ गुण हैं । वो पूजा का विषय है, इसलिये उसे ही ईश्वर माना जाता है । अद्वैत वेदान्त के मुताबिक ब्रह्म को जब इंसान मन और बुद्धि से जानने की कोशिश करता है, तो ब्रह्म माया की वजह से ईश्वर हो जाता है |
यह तो बात हुई विकिपीडिया इत्यादि आधुनिक ग्रंथों से ब्रह्म की खोज |
मैंने सोचा एक पुराण है जिसका नाम ब्रह्म पुराण है अवश्य उसमे कोई तथ्य मिले और यह ब्रह्म की जटिल गांठ सुलझे, परन्तु वहाँ मुझे केवल और केवल पौराणिक कथाएं मिली, सभी पुराणों की तरह सृष्टि की रचना मिली, मनु से लेकर कृष्ण तक की कथाएं मिली पर ब्रह्म शब्द पहेली को कोई वास्तविकता में खोल नही पाया |
पुनः सोचा की यस्क मुनि की निरुक्त के अनुसार - ***ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः* --** ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म (अंतिम सत्य, ईश्वर या परम ज्ञान) को जानता है । अतः ब्राह्मण का अर्थ है - "ईश्वर का ज्ञाता"। अतः ब्राहमण को जानूं तो निश्चित रूप से ब्रह्म को जान सकूँगा, अब ब्राहमण जानने हेतु दो तरीके बचे थे, एक तो वर्ण से आधारित ब्राह्मण को जानूं दुसरे

वेदों में वर्णित है वेदों के चार अंग होते हैं, पहले भाग मन्त्रभाग (संहिता) के अलावा अन्य तीन भागको वेद न मानने वाले भी है लेकिन् ऐसा विचार तर्कपूर्ण सिद्ध होते नहि देखा गया हैं। अनादि वैदिक परम्परामें मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद एक ही वेद के चार अवयव है। कुल मिलाकर वेद के भाग ये हैं :-

संहिता : मन्त्रभाग- यज्ञानुष्ठान मे प्रयुक्त वा विनियुक्त भाग,
ब्राह्मण-ग्रन्थ - यज्ञानुष्ठान मे प्रयोगपरक मन्त्र का व्याख्यायुक्त गद्यभाग में कर्मकाण्ड की विवेचना,
आरण्यक – यज्ञानुष्ठान के आध्यात्मपरक विवेचनायुक्त भाग अर्थ के पीछे के उद्देश्य की विवेचना,
उपनिषद - ब्रह्म माया वापरमेश्वर, अविद्या जीवात्मा और जगत् के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णनवाला भाग | जैसा की कृष्णयजुर्वेदमे मन्त्रखण्डमे ही ब्राह्मण है । शुक्लयजुर्वेदे मन्त्रभागमे ही ईसावास्योपनिषद है ।
उपर के चारों खंड वेद होनेपर भी कुछलोग केवल **'संहिता'** को ही वेद मानते हैं ।
अतः वेदों में वर्णित ब्राह्मण को जानना जरुरी था: वेदों में निम्न लिखित ब्राह्मण ग्रन्थ मिले जिनका विवरण विषयांतर हो जायगा केवल उनके नाम दे कर छोड़ रहा हूँ|

ब्राह्मणग्रन्थ

हिन्दू धर्म के पवित्रतम और सर्वोच्च धर्मग्रन्थ वेदों का गद्य में व्याख्या वाला खण्ड है। ब्राह्मणग्रन्थ वैदिक वांग्मय का वरीयताके क्रममे दूसरा हिस्सा है जिसमें गद्य रूप में देवताओं की तथा यज्ञ की रहस्यमय व्याख्या की गयी है और मन्त्रों पर भाष्य भी दिया गया है। इनकी भाषा वैदिक संस्कृत है। हर वेद का एक या एक से अधिक ब्राह्मणग्रन्थ है (हर वेद की अपनी अलग अलग शाखा है) । आज विभिन्न वेद सम्बद्ध ये ही ब्राह्मण उपलब्ध हैं :-

ऋग्वेद :

ऐतरेयब्राह्मण-(शैशिरीयशाकलशाखा)

कौषीतकि-(या शांखायन) ब्राह्मण (बाष्कल शाखा)

सामवेद :

प्रौढ(या पंचविंश) ब्राह्मण

षडविंश ब्राह्मण

आर्षेय ब्राह्मण

मन्त्र (या छान्दिग्य) ब्राह्मण

जैमिनीय (या तावलकर) ब्राह्मण

यजुर्वेद

शुक्ल यजुर्वेद :

शतपथब्राह्मण-(माध्यन्दिनीय वाजसनेयि शाखा)

शतपथब्राह्मण-(काण्व वाजसनेयि शाखा)

कृष्णयजुर्वेद :

तैत्तिरीयब्राह्मण
मैत्रायणीब्राह्मण
कठब्राह्मण
कपिष्ठलब्राह्मण
अथर्ववेद :
गोपथब्राह्मण (पिप्पलाद शाखा)
इन सभी ब्राह्मण ग्रंथों का संक्षिप्त अवलोकन किया इन सबमे यजुर्वेद में वर्णित शतपथ ब्राह्मण का उल्लेख कई जगह मिला एवं इसे मुख्य ब्राह्मण ग्रन्थ माना गया है |

इन सबके अवलोकन से जो मुझे ज्ञात हुआ या जो मिला कि ये ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के पोषक हैं, तोषक नही, इनके द्वारा वेदों के पठन एवं क्रियान्वयन के बारे में जाना जा सकता है अतः इन्हें वेदों का कर्म कांड भी कह सकते हैं.

महर्षि दयानन्द ने ब्राह्मण ग्रन्थ बताने के लिए अपनी पुस्तक अनुभ्रमोच्छेदन में लिखा है- "जिससे ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों के व्याख्यान भाग हैं, अर्थात् **ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि। अर्थात् शेष भूतानि सन्तीति।"** इससे महर्षि कहना चाहते हैं कि जो ऐतरेय आदि वेद मन्त्रों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ हैं, वे ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाते हैं । और भी-"वेद का अपर नाम ब्रह्म है । -शतपथ ७.१.१५ में कहा है- **"ब्रह्म वै मन्त्रः"**, अतः वेद मन्त्रों की व्याख्या प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों की ब्राह्मण संज्ञा है ।

'ब्रह्म'शब्द का अर्थ यज्ञ भी है । इस आधार पर मन्त्रों की व्याख्या करने के साथ-साथ यज्ञ में उनका विनियोग करने तथा कर्मकाण्ड की व्याख्या एवं विवरण प्रस्तुत करने के कारण भी उन्हें ब्राह्मण नाम से अभिहित किया गया है । भट्टभास्कर ने कर्मकाण्ड तथा मन्त्रों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों को ब्राह्मण कहा है- '**ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः'** – तैतरीय संहिता १.५.१ का भाष्य।'' स.भा ब्राह्मण ग्रन्थों के ही अपर नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी हैं । इन ब्राह्मण ग्रन्थों में जो (देवासुराः सम्पसन) अर्थात् देव (विद्वान्) असुर (मूर्ख) ये दोनों युद्ध करने को तत्पर हुए थे- इत्यादि कथा भाग हैं, उसका इतिहास नाम है, जिसमें '**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्', 'आत्मा वा इदमेकमेवाग्र आसीन्नान्यत् किंचन मिषत्' 'आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास', 'इदं वा अग्रे नैव किंचिदासीत्।'** इस प्रकार के वर्णन पूर्वक जगत् की उत्पत्ति को कहा है, वह भाग पुराण कहलाता है। **"कतपा मन्त्रार्थसामर्थ्यप्रकाशकाः।"** जो वेदमन्त्रों के अर्थ अर्थात् जिनमें द्रव्यों के सामर्थ्य का कथन किया है, उनका नाम कल्प है । इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य, जनक, गार्गी, मैत्रेयी आदि की कथाओं का नाम 'गाथा' है। जिनमें नर अर्थात् मनुष्यों ने ईश्वर, धर्मादि पदार्थ विद्याओं और मनुष्यों की प्रशंसा की है, उनको नाराशंसी कहते हैं ।

यह वर्णन महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेद संज्ञा विचार प्रकरण में किया है।
अंततः ब्रह्म है क्या किसे महावाक्यों में कहा गया है, कभी यह की ब्रह्म प्रज्ञान है, कभी ब्रह्म को आत्मा बताया है, कभी कहा की मैं ही ब्रह्म हूँ, गीता में भी ब्रह्म को आत्मा का सृजक बताया है, कठोपनिषद एवं मुण्डक में भी ब्रह्म को सृष्टि का जनक बताया है. मैंने जो समझा उसे इस प्रकार लिखा :
सामान्य दशा में जब तक देह है तब तक अस्तित्व है देह के पञ्च तत्व में विलय के पश्चात उसका अस्तित्व नही रह जाता, परन्तु वेदों, उपनिषद एवं श्रीमद भागवतम में आत्मा को सर्वोपरि माना गया है, यह अजर-अमर-अविनाशी है, आपकी आत्मा जैसे कर्म को पीछे छोड़ जायेगी वही अनादि काल तक उसके अस्तित्व को दर्शाएंगे |

ब्रह्म-ज्योति से मिलन को व्याकुल आत्मा

जल में स्पंदन
करता तरंगों का सृजन
आत्मा होती सरिता सम
निर्मल मृदु मृदु अनवरत
सरिता का मिलन-समर्पण सागर से
अंतिम बंध है,
ज्यूँ अबाध जीवन मलय की गति
उपवन की सुरभित सुगंध है,

उर तो शांत जलाशय
क्यों है तरंगित
कामना की भावना से है अस्थिर
आशा की कौन सी अभिलाषा
कर गयी आत्म-मंथन से परिचित

अंतर्मन का आत्मा से मिलन
समकालीन जीवन व्यवस्था है
मन एवं तन नही आधार अस्तित्व के
अस्तित्व तो स्थिर चेतन आत्मा की अवस्था है
शक्ति-रूप,ज्ञान-रूप, आनंद-रूप आत्मा
अहैतुक, भौतिक गुणों से परे होती आत्मा,
तन के रथ पर शोभित
चंचल मन को संचालित करती रथवान सी आत्मा,

आत्मा होती अंतस प्रकाश मानव की
चिर परिचित प्राणों के स्पंदन की
अपने ही सुख से चिर चंचल मन की
शांत उर सरोवर की विचलित आत्मा,
परमात्मा-रूपी सागर में विलय को आतुर
जीवन सरिता आत्मा
मनुज है असत्य
मानव अस्तित्व है ब्रह्म
ब्रह्म-ज्योति से मिलन को व्याकुल आत्मा |
(मेरी पुस्तक वेद से वेदांत तक से उधृत)
अंत में जो निष्कर्ष निकलता है वह है:

ब्रह्म क्या है ? –

श्रुतिभगवती ने उपदेश कर दिया "**तच्च ब्रह्म परोक्षभिहितम्"** अर्थात् सब कुछ जो है वह ब्रह्म है। लेकिन सब कुछ परोक्ष है । जो कुछ भी हमारे अनुभव में आ रहा है, परोक्ष है, परोक्ष है, क्योंकि कुछ न कुछ बीच में पर्दा रहता है । सोचते है कि सामने दरबाजा दिख रहा है । विचार करके देखें तो पता चलता है कि बीच में कई पर्दे पड़े हुए है । पहले उसमें प्रकाश पर्दा पड़ा हुआ है । प्रकाश न हो तो दरबाजा कुछ और ही नजर आयगा । इतना ही नहीं, दरबाजे पर पेंट हुआ है, उसकी लकड़ी को छीला हुआ है, यह भी उसका पर्दा है। फिर आँख का पर्दा, आँख के द्वारा देख रहे हैं, इसलिए आँख में जितनी कमियाँ होंगी उनसे युक्त होकर दरबाजा दिख रहा है । मन का पर्दा पड़ा हुआ है । मन के संस्कारों के अनुसार दिखेगा । फिर अहं, अविद्या इत्यादि के पर्दे मान ले । हर हालत मे जिस पदार्थ को एतद् अथवा इदं शब्द से देख रहे हैं वह कभी भी हम साक्षात् समझ में नहीं आता। वह हमेशा परोक्ष ही बना रहेगा । जब कहा "सव्र हि एतद् ब्रह्म" तो ब्रह्म परोक्ष ब्रह्म है । इन सब रूपों में आने वाला ब्रह कैसा है ? यह पता नहीं लगा । यह सारे रूप धारण करके जो आता है । जैसे सिनेमा देखने वाले को यह पता है कि अमुक एक्टर भीम कैसे बनता है या अमुक अर्जुन कैसे बनता है, लेकिन जब वह यह सब नहीं बना हुआ है तब कैसा होता है ? यह किसी को

पता नहीँ लगता । इसी प्रकार इन सब रूपो को लेकर ब्रह्म आ रहा है, इन सब रूपोँ मेँ ब्रह्म है, लेकिन उस ब्रह्म का रूप सचमुच कैसा है ? जब वह सब रूप नहीँ लेता है तब कैसा है? ब्रह्म का परोक्ष रूप से ज्ञान तो हो गया, अब अति अनुग्रह करके श्रुतिभगवती कहती है– ”**प्रत्यक्षतः विशेषेण निर्दिशति** ” तुमको हम उसका अपरोक्ष, प्रत्यक्ष रूप बता देते हैँ जहाँ किसी प्रकार का व्यवधान नहीँ है। मेरी पुस्तक स्वरांजलि से दो तीन प्राथनाएं लेना चाहूँगा जो विभिन्न ग्रंथों के श्लोकों पर आधारित हैं जो हेमें ब्रह्म को समझने में सहाय होंगी.

ब्रह्म ज्ञान

हे ऋषिवर !
ब्रह्म ज्ञान से पूरित विद्या
का आह्वाहन करूँ मैं,
मेरे प्रत्येक अव्यय यज्ञ सामग्री,
स्कंध एवं मध्य अस्थिका का संधि वलय
समस्त वेद ऋचाएं हैं,
मेरे केश सामवेद
ह्रदय यजुर रूप,
ये वस्त्र यज्ञ हवि जान
मेरे अतिथि वृन्द ही मेरे
देवत्व संवर्धक यज्ञ हैं,
अतिथि अराधना कर मैं
यज्ञ दीक्षित हो
जल की कामना करता हूँ,

अतिथि को जल समर्पित कर मैं
यज्ञ को समर्पित करता हूँ मान |
मुझे अतिथि सत्कार का
देवत्व प्रदान कर |
(स्वरांजलि से अथर्व वेद १/६/१-६)

प्रणव ओंकार में पूर्ण ब्रह्म की अनुभूति होती है,
हे प्राणदाता,
व्योम में व्याप्त शून्य की गंभीरता,
सागर की गहराई में समाई नीरवता,
धरा की सहनशीलता
समाहित करती,
ओंकार के त्रिगुणों से आभाषित कर,
ब्रह्म आत्म-चिंतन है,
विष्णु भौतिक संरक्षक
शिव कल्याणकारी मोक्ष प्रदाता,
तीनो का प्रतिरूप ओम्,
समग्र रूप से ओम्-मय कर,
ब्रह्म का वैश्वानर
सम्पूर्ण कामनाओं को
परिपूर्ण करता तैजस रूप
ओकार तु, संतति का उत्कर्ष,
ब्रह्म-ज्ञान का समर्पण
सब को सम्मानित करता उकार तु,
भुत-भविष्य-वर्तमान से मुक्त
आदि-अंत-अनादि से परे प्राग्य ब्रह्म मकार तु,

ओंकार निर्भय ब्रह्म पद,
मेरे चित को इस प्रणव में,
समाहित कर |
श्रीमद भागवत ६-९-४२
हे भगवन !
अग्नि के विस्फुरित अंगारे
समग्र चेतस से भी नही पा सकते
सूर्य का प्रकाशवान तेज,
हम भी आपको समझ पाने में असमर्थ हैं प्रभु,
आप तो पूर्ण ब्रह्म हैं, सर्व ज्ञाता हैं,
आप जग के आदि कारण और जग-पालक हैं,
आप संहर्ता हैं, सृष्टि के नियामक हैं,
आप दिव्य शक्तियों के लीलाधर हैं
जिवात्मों में विद्दमान अंतःकरण में ब्रह्म है ||

तत्वमसि:

उपनिषद में लिखित इस महावाक्य के भावार्थ को आगे जानते हैं:
“तत्वमसि“ (वह तू है)

सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद में अध्याय ६ के खंड ९ से १६ तक श्वेतकेतु (पुत्र) व् अरुणी (पिता) के परस्पर वार्तालाप स्वरुप आख्यिका में तत्वमसि महा वाक्य द्वारा आत्मा व् ब्रह्म का ऐक्य कई प्रकार के उदाहरणों से समझाया है | इस गूढ़ विषय का महान विद्वानों व् आचार्यों ने अपने अपने दृष्टिकोण से विवेचन किया है, विषय इतना गंभीर है कि मुझ जैसे साधारण व्यक्ति का समझाना दुष्कर है | आदिशंकर के भाष्य के अनुसार कुछ समझ आया वह यह है:
छान्दोग्य श्रुति में आया है कि इस जगत में हर पदार्थ या प्राणी का मूल सत् ही है, यह जो मूल है वह अत्यंत सूक्ष्म अणु है, उदहारण स्वरुप जानें, प्राणी का मूल अन्न, अन्न का मूल जल, जल का मूल तेज़ (अग्नि), तेज का मूल अंततः सत ही है | इस सुक्ष्माति सूक्ष्म सत की सूक्ष्मता को अणिमा कहा गया है |
“स य एषोऽणिमा आत्म्यमिदम्सर्व तत्स्त्यर्ये स आत्मा तत्वमसि”
तत्वमसि महावाक्य का अर्थ वह तू है, अथार्थ जिस आत्मा या ब्रह्म से सारा जगत आत्मवान है और जो सत कहा गया है और जो परमार्थ सत्य या सत है

–"वह तू है" ऐसा आरुणि द्वारा अपने पुत्र श्वेतकेतु को समझाने के लिए उदाहरणों सहित जो मन्त्र कहे गए हैं, वे बड़े ही गूढ़ अर्थ वाले हैं |

इन सभी उदहारण सहित वाक्यों के अंत में ऊपर लिखा "स य एषोऽणिमा आत्म्यमिदम्सर्व तत्स्त्यर्ये स आत्मा तत्वमसि" यह वाक्य आया है, इस महावाक्य में तत का तात्पर्य मन्त्र में कहे सतया अणिमा या ब्रह्म से है, "त्वं" पद का तात्पर्य श्वेतकेतु रूप जीव आत्मा से है, व् असि पद दोनों पदों ब्रह्म एवं जीव की एकता बतलाने वाला है| श्रुति बतलाती है कि यह जो समस्त जगत का मूल या अणिमा है वह आत्मा रूप ही है, उसे ही सर्व कहा गया है, वही सत्य ब्रह्म है, और वह आत्मा तू ही है| इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा का बोध करने के लिए आख्यिका के माध्यम से श्वेतकेतु के प्रश्न एवं शंकाओं का समाधान किया गया है :

शंका: जगत के मूल अणिमा को ही आत्मा बताया गया है| इसका बोध किस प्रकार हो सकता है?

समाधान: प्राणी मात्र मृत्यु या प्रलय के समय के अलावा प्रतिदिन सुषुप्ति में भी इस मूल अणिमा को प्राप्त होता है|

शंका: यह कैसे जाना जाय कि सुषुप्ति में प्राणी प्रतिदिन सत स्वरुप को प्राप्त होता है?

समाधान: ***यत्रे तत्पुरुष: स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते स्वैह्यपीतो भवति-छ: ६-८-१***

सुषुप्ति अवस्था के लिए संस्कृत भाषा में स्वपिति शब्द आया है, जिसका अर्थ स्वयम को प्राप्त होना है, अतः क्यूंकि उस समय आत्मा स्वयम को प्राप्त हो जाती है मतलब सत अणिमा को प्राप्त हो जाता है उसे स्वपिति कहेंगे| दृष्टांत द्वारा आदिशंकर ने बताया की जिसप्रकार दर्पण को हटा लेने से दर्पण में स्थित पुरुष का प्रतिबिम्ब पुरुष में ही लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार सुषुप्ति में मन रूपी दर्पण हट जाने पर आत्मा मन संज्ञक जीव रूप को प्राप्त हो जाती है|

शंका: सुषुप्ति में प्रतिदिन अपने स्वरूप (सत्) को प्राप्त होने पर भी यह क्यों नहीं जाना जाता है कि मई सत् को ही प्राप्त होकर वापस जागृत अवस्था में सत् से पुनः आया हूँ?

समाधान: ***ते तथा तत्र न विवेकं लभन्तेमुन्याहं वृक्षस्य रसोअस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रासोअस्मीत्येव खलु सोम्येमा: सर्वा: प्रजा: सति समपद्य न विदु: सति संपद्यामह इति||६-९-१***

जिस प्रकार मधुमक्खियों द्वारा अनेक पुष्पों से संग्रह किया हुआ मधु आपस में मिल जाने पर यह नही जानता कि मैं कौन से वृक्ष के पुष्प का मधु हूँ अथार्थ अपने सत् को नहीं जान सकता उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजा सत् को प्राप्त होकर नहीं जानती कि हम सत् को प्राप्त होकर पुनः आये हैं|

तस्य य्थाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं ब्रजेति स ग्रामात ग्रामम पृच्छन् पंडितो

मेधावी गंधारानेवोप्सम्पदये / तैवमेवेहाचार्य्वान पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ संपत्स्य इति—६-१४-२

श्रुति उदहारण से समझाती है कि जिस प्रकार किसी दयालु पुरुष द्वारा आँखों पर बंधी पट्टी खोल कर गाँव की सही दिशा बता देने पर बुद्धिमान पुरुष उस दयालु की बात अपने गाँव पहुँच जाता है, परन्तु मुर्ख उस दयालु की बात न मानकर जंगल में ही भटकता रहता है, उसी प्रकार सदगुरु के "तत्वमसि" महावाक्य के उपदेश से सांसारिक विषय भोग रूपी पट्टी के हटाने से तथा परमार्थ का सही मार्ग बतलाने पर अध्यात्मिक मार्ग पर चल कर परम लक्ष्य सत् (अणिमा) को साधक प्राप्त कर लेता है, और इस जन्म मृत्यु के चक्कर से छुट जाता है,, परन्तु जो अविवेकी पुरुष है वह उस मुर्ख आदमी की तरह सांसारिक भोग पदार्थों में लिप्त रहकर जन्म मरण के चक्र में घूमता रहता है|

इस प्रकार छान्दोग्य उपनिषद में श्वेतकेतु व् आरुणि के संवाद रूप से अनेक उदाहरणों के माध्यम से "तत्वमसि" महावाक्य का निरूपण किया गया है| हर उदहारण के अंत में स य एषोअणिमा आत्म्यमिद्म सर्व तत्सत्यम स आत्मा" यह सूत्र लिख कर हर पदार्थ को ही सर्व व् सत्य बतलाकर ब्रह्म प्रतिपादित किया है और फिर आत्मा कह कर उसकी ब्रह्म से एकता बतलाई है|

इन चार महावाक्यों में आत्मा व् ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की गयी है, परन्तु यदि इनका गूढ़ रहस्य न समझा जाय तो अज्ञानी व्यक्ति पंचभूतों से बने स्थूल देह या अन्तःकरण रूपी सूक्ष्म शरीर को ही आत्मा मान कर अपने को ब्रह्म समझाने की भूल कर बैठता है | अतः न महावाक्यों के मर्म को समझना आवश्यक है|

आईये "तत्वमसि" के गूढ़ रहस्य को विस्तार से समझते हैं|

सामवेद से लिए गए इस ब्रह्म वाक्य को ओशो ने खूबसूरती से परिभाषित किया है, "तू ही है, हाँ आप अपने में झाकिये आप ही हैं तत्वात्मा ब्रह्म हैं अगर तुम तुम को जान लो तो कुछ जानना बाकि नही रह जाता, सृष्टि की उत्पति भी इस तू तत्व से हुई है, वह दूर नहीं है, बहुत पास है, पास से भी ज्यादा पास है। तेरा होना ही वही है। महावाक्य का अर्थ होता है कि अगर इस एक वाक्य को भी पकड़ कर कोई पूरा अनुसंधान कर ले, तो जीवन की परम स्थिति को उपलब्ध हो जाए। इसलिए इसको महावाक्य कहते हैं।"

महावाक्य का अर्थ है: पुंजीभूत, जिसमें सब आ गया हो। यह महावाक्य **आध्यात्मिक केमिस्ट्री का फार्मूला** है। इसमें तीन बातें कही हैं तत, वह, त्वम्, तू; दोनों एक हैं — तीन बातें हैं। वह और तू एक हैं, बस इतना ही यह सूत्र है। लेकिन सारा वेदांत, सारा अनुभव ऋषियों का, इन तीन में आ जाता है। यह जो

गणित जैसा सूत्र है वह – अस्तित्व, परमात्मा और तू वह जो भीतर छिपी चेतना है वह, ये दो नहीं हैं, ये एक हैं। इतना ही सार है समस्त वेदों का, फिर बाकी सब फैलाव है। तत्वमसि , वह तू हैं |
यहाँ जोर हैं " वह " पर ताकि तू मिट सके | तू को मिटाना हैं | जितना तू मिटेगा, उतना ही वह विराट होगा, प्रगट होगा प्रखर रूप से | इसलिए तू को मिटाना ताकि उसे बिना किसी बाधा के जाना जा सके इसलिए याद रखिये , वह हैं , असली वह हैं , तू तो बस छाया मात्र हैं उसकी , वह आकाश में उगे हुवे पूर्णिमा का चाँद हैं और तू झील में बनी हुयी उसकी परछाई | इसलिए इस सूत्र में जोर " वह " पर हैं |

ये वाक्य किसी विशेष गुण, किसी विशेष अवस्था, चित्त की कोई विशेष परिस्थिति में ही सुनने योग्य हैं। तभी ये प्राणों में प्रवेश करते हैं। बीज डालने का वक्त होता है, समय होता है, मौसम होता है, घड़ी होती है, मुहूर्त होता है। और ये बीज तो महाबीज हैं। इसलिए गुरु इन्हें शिष्य के कान में बोलता है।“
तत्वमसि जैसे महावाक्य एवं भाष्य अगर लिखित में हों तो लोग अधकचरी जानकारी से अपने चातुर्य प्रदर्शन से भ्रम का फैलाव ही करेंगे, यह या अन्य ब्रह्म वाक्य पूर्णता लिए हुए हैं, पुरे के पुरे वेद एवं उपनिषद का समावेश एक ब्रह्म वाक्य में है|

तत्वमसि शरीर से प्राण तत्व की यात्रा है, अज्ञान से पूर्ण ज्ञान की यात्रा है, संताप से पूर्ण आनंद की यात्रा है, अंधकार से पूर्ण प्रकाश की यात्रा है,
थकना नही, डरना नही, रोना नही, चिंता नही, संताप नही, विवाद नही, विषाद नही....तत्वमसि महाबोधि ज्ञान है. तू ही ही अगर चाहो तो तू ही विजेता हो.
||तरति शोकं आत्मवित्, तरति शोकं तत्वमसि|| जो आत्मा का ज्ञान लेता है वह स्वयम को जान जाता है, वह दुःख सागर से ऊपर उठ जाता है
(छान्दोग्य उपनिषद् 6.8.7, सामवेद)
तत्वमसि को कठोपनिषद में और विस्तार दिया गया है, द्वितीय अध्याय प्रथम वल्ली के श्लोक १० में कहा गया है
यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥
अर्थात, जो चेतना तुम में, इस शरीर में बंधी हुई चेतना है, वही अनंत चेतना में भी है। जो वहां है, वो यहां भी है। जो व्यक्ति में है, वही भगवान में है। दोनों में कोई अंतर नहीं है।इसके बाद यमदेव चेतावनी देते हुए कहते हैं:
मृत्युसमृत्युः मापनोति, यैः नानेव पश्यति। अर्थात, जो अपने या इंसान और भगवान के बीच ज़रा-सा भी अंतर देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु का चक्र लगाता रह जाता है।

यहाँ मुख्य बात यह है की यह वाक्य यमराज द्वरा कहाए गए हैं जो की मृत्यु के देवता हैं, और यहाँ जन्म चक्र के सम्बन्ध में शब्द जन्म से जन्म तक न कह कर मृत्यु से मृत्यु कहा गया है, इससे सीधा सन्देश वेद निर्माता यह कहना चाहते हैं की मृयु ही केवल निश्चित है उसमे एवं इश्वर में अंतर न समझो, सिर्फ ये दो निश्चित है बाकि सब अनिश्चित.

तत्वमसि भी यही कहता है की वह और तुम एक हो.

एक कथा कहीं सुनी थी वह उधृत करने को मन कहता है ताकि इस वाक्य को और भलीभांति समझ सकें.

एक शेरनी गर्भवती थी, गर्भ पूरा हो चुका था, शिकारियों से भागने के लिए टीले पर गयीं, उसको एक टीले पर बच्चा हो गया। शेरनी छलांग लगाकर एक टीले से दूसरे टीले पर तो पहुंच गई लेकिन बच्चा नीचे फिसल गया……नीचे भेड़ों की एक कतार गुजरती थी, वह बच्चा उस झुंड में पहुंच गया। था तो शेर का बच्चा लेकिन फिर भी भेड़ों को दया आ गई और उसे अपने झुंड में मिला लिया….. भेड़ों ने उसे दूध पिलाया, पाला पोसा।

शेर अब जवान हो गया. शेर का बच्चा था तो शरीर से सिंह ही हुआ लेकिन भेड़ों के साथरहकर वह खुद को भेड़ मानकर ही जीने लगा। एक दिन उसके झुंड पर एक शेर ने धावा बोला. उसको देखकर भेड़ें भांगने

लगीं, शेर की नजर भेड़ों के बीच चलते शेर पर पड़ी, दोनों एक दूसरे को आश्चर्य से देखते रहे......
सारी भेंड़े भाग गईं शेर अकेला रह गया, दूसरे शेर ने इस शेर को पकड़ लिया। यह शेर होकर भी रोने लगा, मिमियाया, गिड़गिड़ाया कि छोड़ दो मुझे.... मुझे जाने दो... मेरे सब संगी साथी जा रहें हैं.... मेरे परिवार से मुझे अलग न करो.....
दूसरे शेर नें फटकारा- "अरे मूर्ख! ये तेरे संगी साथी नहीं हैं, तेरा दिमाग फिर गया है, तू पागल हो गया है। परन्तु वह नहीं माना, वह तो स्वयं को भेंड मानकर भैंलचाल में चलता था"।
बड़ा शेर उसे घसीटता गया नदी के किनारे ले गया। दोनों ने नदी में झांका। बूढ़ा सिंह बोला- नदी के पानी में अपना चेहरा देख और पहचान... उसने देखा तो पाया कि जिससे जीवन की भीख मांग रहा है वह तो उसके ही जैसा है। उसे बोध हुआ कि मैं तो मैं भेड़ नहीं हूं, मैं तो इस सिंह से भी ज्यादा बलशाली और तगड़ा हूं। उसका आत्म अभिमान जागा, आत्मबल से भरकरे उसने भीषण गर्जना की......
सिंहनाद था वह, ऐसी गर्जना उठी उसके भीतर से कि उससे पहाड़ कांप गए। बूढ़ा सिंह भी कांप गया। उसने कहा- "अरे! इतने जोर से दहाड़ता है?" युवा शेर बोला- "उसने जन्म से कभी दहाड़ा ही नहीं, बड़ी कृपा तुम्हारी जो मुझे जगा दिया," इसी दहाड़ के साथ उसका जीवन रूपांतरित हो गया|

ऐसे ही हम ब्रह्म हैं पर सांसारिक प्राणी के बीच अपना अस्तित्व भूल गए हैं, हम भी पहचाने की मृत्यु और मृत्युदाता हम ही हैं एक हैं, जो मृत्यु है वही यम भी है. अतः मृत्यु निश्चित है सब को मरना है, पूरा कठोपनिषद मृत्यु पर विजय कैसे पायें के बारे में कहता है, यमराज ने जब बालक नचिकेता से तीन वर मांगने को कहा तो नचिकेता ने यही कहा था की वैभव क्षणभंगुर है लेकर क्या करूँगा दे सको तो मृत्यु को दूर करो, तब यमराज ने उपरोक्त वाक्य कहे की तुम और मृत्यु एक हो, जिस दिन जान लोगे तो मृत्यु से मृत्यु का चक्कर समाप्त हो जायगा.

जो देखा गया वह है यह आवश्यक नही, हम आँखों से उसे देखते है प्रतीत करते है, परन्तु सत्य वही है जो तुम जानते हो कि आँखे देखती हैं ,आँखे दो हैं एवं वही हैं पर दृश्य अनेकों होते हैं एवं बनते बिगड़ते रहते हैं

उपनिषदों में सबसे छोटा उपनिषद माण्डुक्य है, कहते हैं बंगाल में जो मिर्ची जितनी छोटी होती है उसमे उतनी ही झाल होती है, ठीक वैसे ही माण्डुक्य के मात्र १२ श्लोक समूचे वेदांत के सार हैं खास कर उसका सातवाँ श्लोक

माण्डुक्य उपनिषद

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।

अदृष्टमव्यवहार्यम ग्राह्यमलक्षणं अचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म

प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैत
चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥
हे देव !
जो ज्ञान बाहर है अन्दर नही वह ज्ञान
जो न ज्ञान स्वरुप वह ज्ञाता नही न ही विद्वान्
जो दृश्य नही, जो श्रुति नही, जो ग्राह्य नही,
न जो ज्ञात वह है प्रपंच|
(मेरी पुस्तक वेद से वेदांत तक से लिया हुआ)
अथार्थ तुम जब तक यह नही पहचानोगे की तुम दृश्य नहीं प्रेक्षक हो तब तक यह भ्रम रहेगा **तत्वमसि** तुम क्या हो इसे पहचानो एवं सत्यता को जानो.

एक कथा याद आ रही है जो स्वामी सर्व प्रियानंद जी के प्रवचन में सुनी थी, चूँकि वे अंग्रेजी में आख्यान देते हैं परन्तु मैं उसका हिंदी अनुवाद दे रहा हूँ|

वे हिमालय की गोद में प्रवास में थे एवं एक बार घुप अँधेरा था आँखों के आगे हाथ घुमाओ तो भी यह पता नही चलता था कि हाथ का अस्तित्व कहाँ है जबकि वह था, तभी एक संत ने राजा जंनक की कथा सुनाई, जो इस प्रकार थी|

जनक के साम्राज्य को दुश्मनों ने विजित कर लिया वे देश छोड़ कर निकल पड़े और पड़ोस के देश में क्षद्म वेश में चले गए क्षुदा की पीड़ा से त्रस्त थे तभी एक लंगर देखा और वे भी लाइन में लग गए, उनका क्रम आता तब तक भोजन समाप्त हो गया और वे भूखे मार्ग पर पड़ी धुल पर लोटने लगे तभी उन्होंने

भोजन बांटने वाले से कहा क्या ज़रा भी नही है क्या, तो उसने बताया कि हाँ सब समाप्त हो गया बस हंडे की तली में थोडा मांड पडा है, वे उसे लेकर ही संतुष्ट थे और जैसे ही खाने लगे ऊपर से एक काक ने चोंच मारी और कटोरा दूर धुल में लोटने लगा और वे उसके पीछे पीछे लौटने लगे, बहुत दर्दनाक दृश्य था| इतने में ही राजा जनक की नींद खुल गयी और देखा की वे अपने राज भवन में आरामदेह पलंग पर हैं, उनकी तेज चीख की आवाज सुन रानी एवं अन्य सेवक दौड़े ए पूछा क्या हुआ, उनके मुख से एक ही बात निकली " यह सच कि वह सच"

राज दरबार में भी जो उनसे कुछ भी कहता तो बस वे कहते "यह सच कि वह सच" कोई भी उनकी समस्या सुलझाने में असमर्थ था क्यूंकि यथार्थ कोई जानता नही था, तभी अष्टावक्र जी का आगमन हुआ उनका अभिवादन आदि कुछ भी नही बस उनसे भी यही प्रश्न "यह सच कि वह सच "

अष्टवक्र ने जबाब दिया : राजन! यह सच है...जब आप धुल में लौट रहे थे तब आप सुप्त अवस्था में थे अतः वह सच था| जनक ने पूछा महाराज जब मैं नींद से उठा तब अपने को सुख वैभव में पाया क्या यह सच नहीं| अष्टवक्र जी ने कहा राजन यह भी सच है | तब राजन क्या यह भी सच वह भी सच, अष्टवक्र जी ने कहा राजन यह दृष्टि दोष है और अवस्था दोष है न वह सच न यह सच , सच मात्र तुम हो, पहचानो कि तुम कौन हो | जब हम जागृत

अवस्था में होते हैं तो कुछ होते हैं जब हम सुप्त अवस्था में होते हैं तब कुछ और अनुभव करते हैं तब हम अर्ध जागृत रहते हैं, जब हम सुसुप्ति में होते हैं तो पूर्ण रूप से अपने तन से दूर हो जाते हैं, पर यह सब अवस्थाएं हैं परन्तु सत्य यह है की हम और हमारी आत्मा ही सत्य है| बाकि सब दृष्टि दोष है|

दृग दृश्य विवेक नामक तत्व विवेचना का एक महान स्त्रोत्र है जिसका पहला श्लोक है,
रूपं दृश्यम लोचनं दृक
तद्दृश्यम दृक्तु मानसं
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी
दृगेव न तु दृश्यते ||
इसका अर्थ हुआ, दृश्य बन गया एवं आँखे दृष्टा(प्रेक्षक) हैं, वैसे ही आँखे जब दृश्य बन जाये तब मन दृष्टा होता है, मन जब दृश्य हो तो साक्षी दृष्टा होती हैं, परन्तु दृष्टा स्वयम कभी भी दृष्टा नही बनता.अथार्थ दिशी जो होते हैं वे साक्षात् हो यह मन पर निर्भर करता है की वह क्या देखता है अतः जो तुम हो वह ही सत्य है बाकी दृष्टा ही हैं. एक कथा याद आ गयी,
एक बार एक संत हिमालय से तपस्या कर हरिद्वार उतारे, उन्होंने कभी सांसारिक उपभोग की वस्तुवें देखि नही थी, गंगा के किनारे कैमरा लगाया गया, उसे एक अच्छे बड़े टीवी से कनेक्ट किया गया, उसमे जो दृश्य था बड़ा मनोहारी था जिसे आँखे देख

रही थी गंगा की उठती लहरे, लहरों का कलकल करता नाद मन बहुत प्रसन्न हुआ, उन्होंने अपने शिष्यों से कहा की भाई मैं स्नान करूँगा आप इस यंत्र से एक लोटा गंगा का पानी ले आओ. परन्तु यह तो संभव नही तह, यहाँ दृश्य भी था, आँखे भी थी, मन भी था, साक्ष्य भी था पर जो था वह वास्तव में नही था , उनके मुंख से माण्डुक्य उपनिषद का उपरोक्त श्लोक निकल पड़ा:

अथार्थ तुम जब तक यह नही पहचानोगे की तुम दृश्य नही प्रेक्षक हो तब तक यह भ्रम रहेगा **तत्वमसि** तुम क्या हो इसे पहचानो एवं सत्यता को जानो.

ब्रह्मांड के बीच संबंध, विषय और वस्तु के रूप में समझाया जा सकता है दूसरे शब्दों में यह पुरुष (आत्मा) और प्रकृति (मामले) के बीच संबंध है। आम आदमी की भाषा में, यह एक व्यक्ति और बाहरी वस्तुओं के बीच संबंध के रूप में समझाया जा सकता है। अदवैत दर्शन में, इस संबंध को "द्रष्टा(प्रेक्षक) और दृश्य" कहा जाता है। इसे "पर्यवेक्षक और मनाया गया", "कथित और कथित", और इसी तरह के रूप में भी कहा जा सकता है। यह अवधारणा अद्वैत वेदांत का मूल है जब यह अवधारणा स्पष्ट होती है, तो अध्यात्म के मूल को समझने में सहायक होगा और यह लेख इस अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए एक विनम्र प्रयास है।

ज्ञान का अर्थ? प्रेक्षक का ज्ञान जो उसने देखा उसका ज्ञान, विश्व जिसे उसने देखा. उपरोक्त उदहारण से मैंने बताया की जो हम (एक प्रेक्षक) देखते हैं वह वास्तविकता से अलग है एक चित्र है एक प्रतिभाष है, अदि शंकर ने **दृग दृश्य विवेक** में इस रहस्य को विस्तृत किया है, भगवत गीता के तेरहवें अध्याय में भी कहा गया है: **यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्|क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ (२७)**हे भरतवंशी अर्जुन! इस संसार में जो कुछ भी उत्पन्न होता है और जो भी चर-अचर प्राणी अस्तित्व में है, उन सबको तू क्षेत्र (जड़ प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (चेतन प्रकृति) के संयोग से ही उत्पन्न हुआ समझ। यहाँ दृश्य और दृष्टा को क्षेत्र एवं क्षेत्रग्य के रूप में निरुपित किया गया है अर्थ वही है की एक जड़ है एक चेतन, जब यह हम जान लें की तू ही जड़ है और तू ही चेतन तब तत्वमसि पूर्ण होता है. समूचा तेरहवां अध्याय आत्मा को परिभाषित करता है इसे हम आगे चर्चा में लायेंगे जब हम महावाक्य **अयं आत्मानं ब्रह्म** पर चर्चा करेंगे |

अब जब गुरु देखता हैं की बात शिष्य की समझ में आ गयी , शिष्य पी लिया इसे , शिष्य ने इसे आत्मसात कर लिया तब वह दूसरा महावाक्य कहता हैं -- त्वं तद्सि , तू वह हैं | **अब यहाँ जोर " तू " पर हैं** | क्योकि जब तू न रहा तो सिर्फ और सिर्फ वही बचा , उसके सिवाय बचा ही क्या ? तो कही भ्रान्ति न हो जाये की मुझे छोड़कर और सब ब्रह्म हैं , उस

भ्रान्ति को न बनने देने के लिए दूसरा महावाक्य हैं की मत घबडा अब तू नहीं हैं , इस लिए अब तू इस योग्य हो गया हैं की तुझसे कहा जा सकता हैं की तू भी वही हैं | इसलिए चिंता न कर, की और सब परमात्मा हैं मुझे छोड़कर | जब सब वही हैं , तो तू भी सब में सम्मिलित हैं | जब तू मिट गया तब तू की बात की जा सकती हैं | फिर किसी प्रकार का अड़चन नहीं की त्वं तद्सि , तू वह हैं |

लेकिन सबसे खास बात इन दोनों महावाक्यो में ये हैं की अभी तक इन दोनों महावाक्यो में " वह " का प्रयोग हुवा हैं | जैसा की आप सबको पता हैं की वह शब्द दूरी का प्रतीक हैं | जैसे अभी हम किन्ही वस्तुवो की बात कर रहे, जैसे अभी ब्रह्म की बात नहीं छेड़ी, अभी भी थोड़ी दूरी बाकी हैं , अभी यात्रा शेष हैं| आप सबको तो ज्ञात ही हैं की गुरु फूंक-फूंक कर कदम रखता हैं, क्योकि शिष्य के साथ खतरे की बहुत सम्भावनाये रहती हैं , क्योकि हम लोग सदियों से, जन्मो जन्मो से भ्रान्ति में जिए हैं | या यु कहे की हमारे रोम रोम में भ्रान्ति समायी हवी हैं | गुरु पहले उसे धोता हैं , साफ़ करता हैं , निखरता हैं और जब सब कुछ साफ़ हो जाता हैं यहाँ तक की जब स्वयं शिष्य जो पहले था आने के समय वो नहीं रहता तो उसपे ईश्वरीय रंग से रंगता हैं | शायद तभी कबीर दास ने गुरु को रंगरेज कहा हैं |

जब ये बात पूरी तरह साफ़ हो जाती हैं की शिष्य समझ गया की वह नहीं हैं, स्वयं नहीं हैं, अस्तित्व हैं

तो गुरु ने उससे दूसरी बात कही थी की भय मत कर, तू भी वह अस्तित्व हैं | मगर अभी " वह " का प्रयोग किया जा रहा हैं | जब शिष्य को यह भी बात समझ में आ गयी की अस्तित्व , वह सब कुछ हैं तब गुरु को लगा की अब समय आ गया हैं जब बात को और गहराई जा सकती हैं, थोडा और, थोडा और सुक्ष्मतिसूक्ष्म में प्रवेश कराया जा सकता हैं | तब गुरु ने कहा कि त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म हैं | सिर्फ वह ही नहीं हैं तू, ब्रह्म भी हैं तू |अब गुरु ने वह को व्यक्तित्व दिया, वह को चेतना दी, वह को जीवन दिया|अगर यही गुरु शिष्य को पहले कह देता कि, त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म हैं | तो शिष्य के अन्दर बड़ी अकड़ आ जाती , तब तो भ्रान्ति होने वाली थी, तब तो शिष्य के अन्दर अहंकार जन्म ले ही लेता लेकिन गुरु ने क्रम से, धीरे धीरे. नेति नेति से मूर्तिकार धीरे धीरे मूर्ति को गढ़ता हैं , छेनी उठाकर धीरे धीरे पत्थर को तोड़ता हैं, जो जो अनावश्यक हैं सबको काट के बाहर निकाल देता हैं , सबको अलग कर देता हैं तब जाके मूर्ति प्रकट होती हैं | अब गुरु को वह शब्द प्रयोग में करने कि जरुरत नहीं, अब अस्तित्व कहना उचित नहीं, अब परमात्मा को लाया जा सकता हैं | आप ध्यान देंगे तो देखेंगे कि गुरु एक एक सूत्र को कितनी समझदारी पूर्वक आगे बाँधा रहे हैं | पहले दो सूत्रों में तो गुरु ने परमात्मा का जिक्र तक नहीं किया | तीसरा सूत्र तो उसे कहा जा सकता था जिसने पहले दो सूत्र पुरे कर लिया हो| त्वं ब्रह्मास्मि, तू ब्रह्म हैं|

अब गुरु आहिस्ता से कहता हैं --अब पते कि बात सुन, अस्तित्व कोई जड़ पदार्थ नहीं हैं, ब्रह्म हैं, चिदानंद हैं, चैतन्य हैं| त्वं ब्रह्मास्मि का अर्थ हैं--तू शरीर नहीं हैं, तू मन नहीं हैं, तू आत्मा हैं| ऊपर कि ये तीनो घोषनाये गुरु ने की| फिर गुरु प्रतीक्षा करता हैं | जब शिष्य समझ लेता हैं, समझ का यहाँ अर्थ पी लेता हैं, जब डोलने लगता हैं मस्ती में, जब पूर्ण रूप से मस्ती में आ जाता हैं, तब उसके भीतर उद्घोष होता हैं --अहम् ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ| इन्हें महावाक्य कहा गया हैं, क्योकि इन चारो वाक्यों में सब शास्त्र आ जाते हैं | कुछ भी शेष नहीं बचता | क्या आप लोगो को लगता हैं कि अब भी कुछ शेष बचा हैं ? लेकिन शर्ते समझ लेना, मैं जायैं तो ही सम्भावना हैं यह जानने की की "मैं कौन हु"| "मैं" जाये तो ही ब्रह्म आएगा और फिर तब अद्भुद अवस्था आ जाती हैं| लेकिन लोग अक्सर "मैं" को पकडे रहते हैं और अपने को सही साबित करने के लिए इन सूत्रों में से किसी एक को पकड़ कर चर्चा शुरू कर देते हैं| फिर भ्रांतियों का दौर रुकने का नाम ही नहीं लेता |

अद्वैत दर्शन संतो यतियों के चिंतन के लिए नही बना, यह एक गहन विचार है एक सिद्धांत है अगर इसे माना जाय इस पर चला जाय तो सामान्य से सामान्य व्यक्ति के जीवन को भी सरल एवं नियमित कर देता है. संत एवं ऋषि सदैव सत्य एवं तथ्य खोजते हैं, वह तथ्य एवं सत्य जो बिना जाति,

लिंग, धर्म के भेद के सब की समस्या का निदान करे. अद्वैत दर्शन तो हमें अपने जीवन को समझने की क्रिया है.

एक उदहारण देता हूँ, हम सूर्यास्त दखते हैं और सोचते हैं की सूरज डूब गया क्या वास्तव में सूरज डूब गया, नही सूरज तो कभी नही डूबता, पृथ्वी के निरंतर चक्कर लगाने से हमें यह भ्रम होता है; परन्तु यह हमारी सोच है दृश्य और दृष्टा का भ्रम यह भ्रम हर व्यक्ति को है वह संसार को अपने नजरिये से देखता है, जो की प्रायः सत्यता से दूर होता है; जो व्यक्ति इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को नही जानता वह अपने अनुभव को भ्रम में फैलाता है| इसी प्रकार अधिकांश अनुभव को हम गलत ढंग से प्रसारित करते हैं, अरे जीवन तो अनुभव करके आनंद लेने का नाम है, और यही अद्वैत सिद्धांत बताना चाहता है. यह समझ

ही विश्व को हमें बेहतर ढंग से समझने का मौका देती है. अतः ज्ञान प्रतिभाश(ILLUSION) एवं भ्रम को मिटाने के लिए होता है. अद्वैत दर्शन मानता है कि विश्व द्वैत नही अनंत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है. जिस संसार को हम देखते हैं वह ब्रह्म ही है, परन्तु इस तथ्य को हम स्वीकार नही करते, अद्वैत दर्शन इसे समझने एवं स्वीकार करने में मदद करता है.

अद्वैत दर्शन को हम श्रुति, युक्ति एवं अनुभव से ही जान सकते है, हर व्यक्ति को उसका अनुभव ही उसे स्वयम को जानने में सहायता करता है. कोई गलती

करता है तो यह अनुभव बताता है की वह कहाँ गलत था इसी प्रकार वह अनुभव से विश्व को समझता है. अपने अनुभव से तथ्यों को जानता है अतः प्रेक्षक सदा दृश्य से अलग होता है, यह यहाँ भी निरुपित होता है की (भोग) अनुभव, भोक्ता से पृथक होता है. दृग दृश्य विवेक में यह सत्य उजागर करने का साहस आदि शंकर ने किया जो कोई अन्य नही कर सकता.

एक उदहारण से समझ में आएगा, आप किसी कमरे में हैं वहाँ पूरा प्रकाश है, बाहर अन्धकार परन्तु कमरे में अचानक बिजली चली जाती है तो अँधेरा ही अँधेरा छा जाता है, हम सिर्फ किसी वाट्ट को छू कर अनुभव कर सकते हैं, हम कहते हैं अँधेरा हो गया क्या वास्तव में अँधेरा हुआ या प्रकाश का अभाव हुआ, इस अवस्था में दो अनुभूति होंगी, एक प्रकाश के अभाव की दूसरे अंधकार की दोनों एक हैं पर अनुभूति अलग हैं, तुम वही हो तुम्हारा प्रकाश कहीं चला गया अतः तुम्हें अपने अन्दर अंधकार नज़र आ रहा है, यही भाव है तत्वमसि का. तुम अपने को पहचानो, असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, यथार्थ की ओर गमन करो, प्रकाश की ओर प्रस्थान करो.

विश्व हमें अलग दीखता है क्यूंकि यह अलग अलग विभिन्न रूपों और विचारों के साथ प्रकट होता है हम पांच इंद्रियों के साथ दुनिया का अनुभव करते हैं (चक्षु, कर्ण, नासिका, जिव्हा, चर्म) इन्हें पञ्च

रसेंद्रियाँ भी कहा जाता है ये और साथ में मन ही हमे अनुभव करवाते हैं , इनमे प्रमुख चक्षु है, अदि शंकर ने दृग दृश्य विवेक में लिखा है,:

आन्ध्य्मान्ध्य पतुत्वेषु, नेत्र धर्मेषु चैकधा,
संकल्पेयं मनः श्रोत, त्वगादौ योज्यतमिदम,

अर्थार्थ: अंधापन, मंदता और तीव्रता, ये चक्षु की विशेषता हैं, मस्तिष्क एक को मन समझाता है एक होने के नाते, और यह बात ध्वनि स्पर्श पर भी लागू होती है|"
एक जोड़ी आँखे दृश्य को विभिन्न तरीके से देखती हैं, प्रेक्षक आब्जर्वर तो नेत्र हैं और दृश्य विश्व है. हम जो देखते हैं वह मंद आकृति होती है तो मस्तिष्क में वैसी ही अनुभूति होती है, अतः इन्द्रियों का केंद्र मस्तिष्क मेँ प्रतिभूत होता है. विषय को थोडा संक्षिप्त करूँ तो संशोधन दुनिया के लिए है और ब्रह्म के लिए नहीं होता बल्कि जब अज्ञान दूर हो जाता है, तो एक यह महसूस स्व-अनुभूति होती है, पर्यवेक्षक (द्रष्टा) ब्रह्मं है और दृश्य (देखा) दुनिया है, अतः जो भी अनुभूति है वह तू (प्रेक्षक,आब्जर्वर)में है और यह तू ही तुम में (दृश्य) है |
एक उदहारण से समझें : आंखों में कॉर्निया व्यापक रूप से प्रकाश की किरणों को अलग करता है और उन्हें पलकों के माध्यम से झुकाता है। पुतली के पीछे

लेंस, आंख, रेटिना के पीछे प्रकाश को ध्यान में रखने में मदद करता है। रेटिना में तंत्रिका कोशिका बिजली के आवेगों में प्रकाश किरणों को बदलती है और उन्हें ऑप्टिक तंत्रिका के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंचाती है, जहां एक छवि का दृश्य बन जाता है। दर्शनशास्त्र में कहा हैं, मस्तिष्क द्वारा प्राप्त वस्तु की छवि, मन पर एक छाप बन जाती है। हमें ऑब्जेक्ट सीधे नहीं दिखाई दे रहा है हम सीधे दिमाग में वस्तु की छवि देखते हैं। हम वह दुनिया नहीं देखते, या देखना चाहते हैं, जो हमारे मन में नहीं है, मस्तिष्क में हम छवियों की विविधता को मानते हैं|

दिमाग में उत्पन्न गुण, अलग-अलग इच्छाओं, संदेह, विश्वास और अविश्वास, दृढ़ता, भय आदि के रूप में अद्वेत चेतना द्वारा प्रकट होते हैं। विभिन्न मानसिक गतिविधियों का पालन करने के लिए एक वेक्षक होना चाहिए। वेक्षक चेतना है और दृश्य मन है | चेतना, जो पर्यवेक्षक है, में कोई गुण नहीं है और चेतना का पालन करने के लिए कोई पर्यवेक्षक नहीं है। अवलोकन की श्रृंखला चेतना के साथ बंद हो जाती है

(दर्शन में चेतना चिकित्सा में प्रयोग शब्द से अलग है। चिकत्सीय शब्द 'जागरूक' का मतलब है, आसपास के बारे में पता है। दार्शनिक चेतना का गहरा अर्थ है और अद्वैत वेदांत का पूरा प्रयास है कि चेतना को समझना)।

रूपं दृश्यम लोचनं दृक
तद्दृश्यम दृक्तु मानसं
दृश्या धीवृत्तय: साक्षी
दृगेव न तु दृश्यते ||

इसका अर्थ हुआ, दृश्य बन गया एवं आँखे दृष्टा(प्रेक्षक) हैं, वैसे ही आँखे जब दृश्य बन जाये तब मन दृष्टा होता है, मन जब दृश्य हो तो साक्षी दृष्टा होती हैं, परन्तु दृष्टा स्वयम कभी भी दृष्टा नही बनता.अथार्थ दिशी जो होते हैं वे साक्षात् हो यह मन पर निर्भर करता है की वह क्या देखता है अतः जो तुम हो वह ही सत्य है बाकी दृष्टा ही हैं.

अद्वेत कहता है कि अनुभूति बाह्य विषय है, प्रकृति और मानसिक गुणवत्ता दृग विवेक के सूक्त-६ में बताया गया है,

चिच्च्छाया आ वेशेतो बूदौ, भानम धीस्तु द्विधा स्थिता,
एकाह्मकृतिरन्या स्याद, अन्तःकरणरूपिणी ||

"मन में प्रकट चेतना, मन में दोगुना परिलक्षित होती है, चमकती है; जिसका
एक पहलू है अहंकार (अहं), दूसरा है अंतःकरण (मन) " अतः हम मन के दो पहलुओं को देखते हैं. १. अहंकार, २. अंतःकरण

दोनों अहंकार और अंतःकरण वृत्त (विचार) हैं। अहंकार "मैं" (अहम) का शुद्ध विचार है। अहमत्व में अहंकार गर्व का द्योतक नहीं है; यह एक व्यक्ति का अस्तित्व है, और यह एक विदित (सोचा) है। अहंकार चेतना भी तो नहीं है | अंतःकारण (मन) एक व्यक्ति का अनुभव है। वेदांत में, अनुभवों को प्रतिबिंबित चेतना कहा जाता है इंप्रेशन के रूप में अनुभव अचेतन हैं, जब तक कि वह चेतना द्वारा प्रकाशित नहीं होता। इस तथ्य को अद्वैत दर्शन के दो महत्वपूर्ण सिद्धांतों द्वारा समझाया जा सकता है। वो हैं

1. प्रतिबिम्ब वाद (reflection theory) २. अवच्छेद वाद
(limitation theory)

प्रतिबिम्ब वाद का एक उदहारण देखें :

जब सूरज की रोशनी पानी से भरी बाल्टी पर पड़ती है, तो पानी सूरज की रोशनी को दर्शाता है प्रतिबिंब शुद्धता और पानी में मौजूद तरंगों की गति पर निर्भर करता है। अगर पानी में तरंगें हैं, तो प्रतिबिंब सही नहीं होगा। उसी अर्थ में, सूर्य के प्रकाश की चेतना से तुलना की जाती है| शरीर की तुलना बाल्टी से करें, और पानी की तुलना मन के साथ | चेतना मन को उजागर करती हैं, और मन चेतना को दर्शाता है इसे "प्रतिबिंबित चेतना" कहा जाता है मन में मौजूद लहर (विचार) मन से चेतना के प्रतिबिंब

को प्रभावित करती है। इसे प्रतिबिंब सिद्धांत कहा जाता है

अवच्छेद वाद का उदाहरण देखें :
अंतरिक्ष असीमित है और इसका कोई रूप नहीं है, लेकिन एक बर्तन के अंदर, अंतरिक्ष को बर्तन द्वारा सीमित किया जाता है जब बर्तन टूट जाता है, तो बर्तन के अंदर की जगह अनंत हो जाती है। बर्तन अंतरिक्ष पर आरोपित है यहां, बर्तन की तुलना मन से है, अंतरिक्ष की चेतना से, चेतना पर मन को आरोपित किया जाता है अनंत चेतना मन द्वारा सीमित है मन अनुभवों से भरा है, जब अनुभव अनंतता में विलय हो जाते हैं, तो मन अनंत हो जाता है इसे सीमा सिद्धांत कहा जाता है |
ऊपर मैंने बताया है कि अहंकार विशुद्ध मैं की अनुभूति है, अहंकार की पहचान होती है या चेतना के साथ जुड़ती है तो हमें ऐसा महसूस होता है कि हम 'मैं का अनुभव कर रहे हैं.
“छायाह्नोकार्यो अल्कयम तप्त्यः पिंदुवान मातम “
प्रतिबिंबित चेतना के साथ अहंकार की पहचान एक चमकदार गर्म लोहे की गेंद की तरह है "। (उष्णता लोहे के गेंद में नही होती, जब यह गरम किया जाता है तब यह गर्माहट ग्रहण करता है और आग जैसा चमकदार दीखता है.)
अहंकार और हमारे जीवन के अनुभव अलग हैं, लेकिन जब हम अनुभव के साथ अहंकार (मैं

समझता हूं) की पहचान करते हैं, तो यह 'मैं अनुभव' बन जाएगा जिसका मतलब है 'मेरा अनुभव'। उदाहरण के लिए, दुख हमारे अनुभव है जब हम अहंकार के साथ इस अनुभव की पहचान करते हैं, तो हमें लगता है कि “मैं उदास लग रहा हूँ” योगी अपने अनुभवों (जैसे कर्म योगी) के साथ अहंकार की पहचान नहीं करते हैं। कर्म कर्म अपने कर्तव्य के परिणाम के साथ खुद को पहचानने के बिना अपने कर्तव्यों (कर्म) करते हैं। यह भगवद गीता में समझाया गया है: "तुम्हारा अधिकार केवल काम करना है, लेकिन इसके फल नहीं;, तुम्हारा मकसद फल न हो बल्कि कर्तव्य हो और न हीं आपका लगाव निष्क्रिय होना चाहिए "भगवत गीता (2,47) | जब हम अपने कर्तव्य के अनुभव (परिणाम) के साथ अहं ("मैं" भावना) की पहचान करते हैं, तो परिणाम हमें प्रभावित करेगा यही एक गलत प्रथा है और यह ही एक समस्या है

चेतना के साथ अहंकार को संयुक्त करना गलत है, क्योंकि अहं एक वृत्ति (विचार) है, और चेतना एक वृत्ति नहीं है। अहंकार और चेतना की पहचान प्राकृतिक है, और यह कर्म और अज्ञानता के कारण है।

हमें यह विश्लेषण करना है कि, यह पहचान क्यों और कैसे होती है? इसका उत्तर है, यह "माया" के कारण है माया सिर्फ भ्रम नहीं है माया की दो शक्तियां हैं

१, आवरण शक्ति २. विक्षेप शक्ति.
श्री आदि शंकर का 'सांप और रस्सी' का प्रसिद्ध उदाहरण इस अवधारणा को बताता है। मंद प्रकाश में, एक रस्सी साँप की तरह दिखती है उज्ज्वल प्रकाश में, असली रस्सी का पता चला है। यह एक बहुत सरल उदाहरण है, लेकिन यह छुपा छुपाई अवधारणा को बताता है पहला, मूल रस्सी अस्पष्ट है। दूसरा, गैर वास्तविकता, साँप का प्रक्षेपण है साँप मौजूद नहीं है, यह केवल एक भ्रम है जब वास्तविक अछूत होता है, तो असत्य दिखाई देता है। जब ब्रह्मं अस्पष्ट हो जाता है, तो मन और इसकी पहचान प्रकट होती है। यह उदाहरण एक व्यक्तिगत अनुभव (सूक्ष्म ज्योति) है।
चेतना और मानसिक क्रियाकलापों के साथ-साथ चेतना और संसार के बीच का अंतर भी छुपा हुआ है, और यह अज्ञानता के कारण है। सांसारिक जीवन इस गुप्त शक्ति के कारण है प्रतिबिंबित चेतना विचित्रता (चेतना) पर आरोपित है। यह ब्रह्म (चेतना) है, जो मन के रूप में प्रकट होता है (चेतना परिलक्षित होती है)। जब अस्पष्ट शक्ति गायब हो जाती है, तो उपस्थिति के रूप में प्रक्षेपण गायब हो जाता है। इस संदर्भ में गायब होने का अर्थ है, दुनिया हमारी दृष्टि से गायब नहीं होगी, इसके बजाय, जब माया समझ आ जाय, दुनिया के साथ हमारी बातचीत और हमारे विश्वास सकारात्मक तरीके से बदल जाएंगे। उदाहरण के लिए, जब हम दिन के

प्रकाश में खुले आसमान देखते हैं, तो यह रंग में नीला है। आकाश बेरंग है, लेकिन यह विकरण(rayleigh के बिखरने के कारण नीले रंग में दिखाई देता है सूरज से कम तरंग दैर्ध्य प्रकाश (नीला), वातावरण में गैस अणुओं द्‌वारा ग्रहण होता है। अणु अलग-अलग दिशाओं में अवशोषित नीले प्रकाश को दर्शाते हैं। यह आकाश में सभी बिखरे हुए होते हैं, और आकाश नीला दिखता है आकाश एक ही दिखाई देता है, लेकिन इस वैज्ञानिक तथ्य की समझ, आकाश के रंग के बारे में हमारी अज्ञानता को दूर करता है। इस तरह, माया की समझ, हमारी अज्ञानता को दूर करती है कि ब्रह्मांड के नाम और रूप में ब्रह्मांड ब्रह्म से अलग हैं |

अतः हमे तू को जानना आवश्यक है की तुम में तुम ही हो, ज्यूँ उपरोक्त उदाहरण में नीला रंग गगन में न हो कर भी व्याप्त है, ब्रह्म में चेतना है जो अद्‌वेत का मुख्य सिद्‌धांत है.

देवर्षि नारद विष्णुभक्त परमज्ञानी थे,सारा ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी जब उन्हें शांति नही प्राप्त हुई तो वे अपने गुरु सनतकुमार के पास गए, और बौले" हे गुरुदेव! मेरा चित अशांत क्यों है, क्या मेरे ज्ञान में कौई कमी रह गयी मेरा मन तुष्ट क्यूँ नही है, क्यूँ चित एकाग्रता मन में नही है ? आप मुझे ज्ञान दीजिये, मैं शांति को प्राप्त कर सकू, तत्वमसि को जान सकूँ और आत्मभाव और मूल तत्व का पूर्ण ज्ञान ले सकूँ"

गुरु ने सर्वप्रथम तत्वमसि ज्ञान देने की बात की. नारद ने कहा “ मैंने चारों वेद इतिहास, पुराण, शल्य विज्ञान, राशी शास्त्र, गणित शास्त्र, विधि शास्त्र, वादविवाद शास्त्र, अर्थ शास्त्र, एकायन, नीतिशास्त्र, भूत विज्ञान, भौतिक, रसायन,प्राणी शास्त्र, ज्योतिष, ललित कला इत्यादि सब का ज्ञान प्राप्त किया है, इन सब में मैं पारंगत हूँ, पर इनको पढ़ कर मुझे शब्द ज्ञान तो हो गया पर आत्मज्ञान नही हुआ. मन शांत नही हो पाया, ..

||तरति शोकं आत्मवित्, तरति शोकं तत्वमसि||

जो आत्मा का ज्ञान लेता है वह स्वयम को जान जाता है, वह दुःख सागर से ऊपर उठ जाता है, मुझे यह ज्ञान दें गुरुवर.

सनत कुमार ने कहा, हे नारद ! तुमने जो सीखा है वह

शिक्षा है, ज्ञान नही, ज्ञान की यह पहली सीढ़ी है, सृष्टि के सरे जिव जंतुओं का ज्ञानारंभ शिक्षा से ही होता है. हिक्षा से परम ज्ञान नही बल्कि कौशल प्राप्त हो सकता है, अतः क्रम बढ तरीके से समझो की शिक्षा के आगे क्या क्या आयाम हैं.

नारद ने पूछा शिक्षा से बड़ा क्या है, सनत कुमार ने कहा प्रथम तो शिक्षा से बड़ी वाणी ही है.

वाणी: वाणी से ही शास्त्र का ज्ञान होता है,पृथ्वी, आकाश, जल, तेज, वायु, मनुष्य, पशु, पक्षी, वन, जंगल, वनस्पति, सबका ज्ञान वाणी द्वारा होता है,

वाणी से ही धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, सहृदय-असहृदय सबका ज्ञान होता है, अतः शास्त्र शिक्षा से बड़ी वाणी है, वाणी के माध्यम से ही ज्ञान प्रसारित होता है.
नारद जी ने तब पूछा वाणी से बड़ा क्या है?

मन (knowing) :शिक्षा एवं वाणी दोनों का अनुभव मात्र मन द्वारा किया जा सकता है, मनुष्य पहले मन में सोचता है की पढ़ूं की कर्म करूँ, समस्त कामनाओं की इच्छा मन में होती हैं, तब वह उसे पूर्ति की भावना लिए पाता है, अतः मन ही आत्मा है, मन ही मानो लोक है, मन की प्रेरणा से वाणी शास्त्रों का उच्चारण करती है, मन अतः महान है, मन की गति असीमित है, परन्तु मन से बड़ा क्या है?

संकल्प(willing): मन से भी बड़ा उसका संकल्प है जब मनुष्य विचार के बीज मन में डालता है तो निरंतर मनन कर संकल्प लेता है उसे पूर्ण करने के लिए और बिना संकल्प के कोई कार्य या कोई विचार पूर्ण नही होता. संकल्प होने से मन वाणी को प्रेरणा देता है और शब्द अथार्थ शास्त्र उच्चारित होते हैं, शब्द ही सम्पूर्ण क्रियाकलाप की इकाई है, शब्दों के समूह को ही मन्त्र कहा जाता है, शब्द ही मन्त्र में समाहित हैं.
मन से लेकर शिक्षा तक सबका अधर संकल्प ही है, संकल्प ही पूर्ण आत्मा है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में,

प्रत्येक पिंड में, धरती आकाश बदल वायु सब में एक ही संकल्प कार्य करता है, संकल्प है तो वर्षा है, संकल्प है तो वर्षा का फलादेश अन्न है, अन्न के संकल्प से प्राण हैं, फिर कर्म, कर्म के संकल्प से ही सारा लोक चलता है, सृष्टि की अणु-अणुमें संकल्प ही संकल्प है. अतः संकल्प अर्चनीय है. संकल्प की गति सीमित है पर रुकना नही, क्यूंकि **संकल्प से बड़ा चित्त** है |

चित्त भाव (feeling): जब किसी विषय की चेतना होती है तो मन में अनुभूति की जागृत होती है, और संकल्प तीव्र होता है, मन, मन्त्र, शब्द, वाणी, कर्म सब गतिमान हो उठते हैं, चित्त आधारभूत है, यह किसी प्राणी की मूल आत्मा है, इसीलिए कहा जाता है की कोई खूब शिक्षित हो परन्तु चित्त से शून्य हो तो उसका ज्ञान व्यर्थ है. इसी प्रकार कम ज्ञानी परन्तु प्रबल चित्त वाले की बातों का महत्व होता है|

“तानि ह वा एतानि चितैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठीतानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्ती
त्यवैनमाहुर्यदय्म वेद य्द्वा अयम विद्वान्नैत्थ्मचित: स्यादित्यथ
यद्यल्प विचित्त वान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते |
जो अपनी चित्त भावना को आधार बनाकर संसार में कर्मशील रहता है, वह जहाँ तक चित्त की गति है,

वहाँ तक पूर्ण सिद्ध प्राप्त करता है. नारद ने तब प्रश्न किया चित्त से बड़ा कौन?

ध्यान(concentration): प्रत्येक जीव को अनेक अनुभूतियाँ होती हैं, परन्तु ध्यान एक का ही होता है, एक अनुभूति में चित्त को लगातार लगाकर रखना ही ध्यान है. साधना का आधार ध्यान है, एकाग्रता का नाम ध्यान है, जब आप ध्यान लगते हैं तब आप अपनी शक्तियों को एकत्रित कर प्रबल करते हैं, इस सृष्टि में जल, पर्वत ,आकाश, मनुष्य सब ही तो ध्यान मग्न हैं, प्रभुत्ता, महानता, सफलता जिनको प्राप्त है उनका जीवन आधार ध्यान ही है. ध्यातव्य है ध्यान **से भी बड़ा विज्ञान** होता है|

विज्ञान : विज्ञान का अर्थ है गहन ज्ञान या गहन जानकारी, या गहनता: गहरे उतरना सभी पक्षों को समझना, अदि-अंत सभी स्वरूपों को समझना | प्रत्येक मनुष्य में अनुभूतियाँ अच्छी और बुरी दोनों हो सकती हैं, उन अनेक अनुभूतियों में एक विषय पर निरंतर अनुभूति को ध्यान कहा गया है, ध्यान के माध्यम से मनुज अल्प और प्रभुत्व दोनों हो सकता है, लेकिन जब ध्यान की गहनता में अपने मानस को लीन कर देता है, मानस में एकाकार हो जाता है, तब वह मूल तत्व परम तत्व विज्ञान को अपनाता है, और इस परम तत्व के द्वारा ही सब वेद, शास्त्र, वायु, आकाश, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य

सब का ज्ञान हो सकता है|इस गहन विज्ञानं तत्व द्वारा मनुष्य विषय के सब तत्वों को जान लेता है, तब उसको मानस विज्ञानं और ज्ञान दोनों लोकों की सिद्धि प्राप्त कर लेता है, लेकिन विज्ञानं की भी एक सीमा है| **तब विज्ञान से बड़ा कौन** :
ऋषि ने बतलाया **विज्ञान से बड़ा बल होता है:**

बल(strength) : विज्ञान तो एक मानसिक तत्व है, लेकिन बल शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सभी तत्वों को जागृत करता है, एक बलवान सौ वैज्ञानिकों को भयभीत कर सकता है, लेकिन जब विज्ञान से युक्त व्यक्ति जब बलवान हो जाता है तब परिवर्तनकारी एवं क्रन्तिकारी घटनाएँ होती हैं|
बल से सारे गृह ,नक्षत्र अपनी अपनी गति लेते हैं, भगवान् के नियम रूपी बल से सब लोक अपनी अपनी मर्यादा में स्थित हैं, लेकिन बल की भी एक सीमा है, हमे जानना होगा कि यह बल मूल रूप से उत्पन्न कैसे होता है, उपनिषद के अनुसार बल की उत्पत्ति अन्न और जल से होती है|

<u>तैतरीय उपनिषद भृगुवल्ली-अष्टम अनुवाक</u>
अन्नं न परिचक्षित । तद व्रतं । आपो वा अन्नं । ज्योतिरन्नादम । अप्सु ज्योति: प्रतिष्ठितम । ज्योतिष्याप: प्रतिष्ठिता: । तदेतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम ।
स य एतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति ।

अन्न्वानन्नादो भवति ।
महान्भवति प्रजया ।
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान कित्याम ।।

संसार में सभी प्राणी अपने मूर्त रूप में अन्न-जल ग्रहण करते हैं, लेकिन अन्न और जल की सार्थकता सिद्ध करने के लिए **तेज की आवशयकता होती है,** तेज़ से तात्पर्य, प्रकाश, ऊष्मा, तीव्रता से है, इसी तेज़ के कारण पृथ्वी पर जल की वर्षा होती है, तेज़ के कारन ही अन्न होता है, तेज़ के कारण ही मनुष्य अन्न-जल ग्रहण करने में सक्षम है, सूर्य का प्रकाश भी तेज़ स्वरुप है| इसीलिए गायत्री मन्त्र का जाप है, उसमे कहा है: **ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्स्वितुर्वरेण्यम् | भर्गोदेवष्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात् | हे सूर्यदेव हम तेजस्विता को प्राप्त करें |** तेज ही तो देह, मन, बुद्धि सबको आलोकित कर देता है, इस तेज की भी एक सीमा है, **तब तेज से बड़ा कौन? सनत्कुमार ने बताया तेज से बड़ा आकाश है |**

आकाश (infinity): वह आकाश जो सीमा रहित है, बाधा रहित है, सब लोकों को अपने में समेटे हुए है, वह आकश परब्रह्म है, इस आकाश में अलग अलग लोक स्थापित हैं. पटल लोक से आकाश लोक, समुद्र तल से मेघ, सूर्य से यम तक, यह आकाश ही परिपूर्ण है, सभी तो इसमें गतिशील हैं, सरे गृह, नक्षत्र, तारे, इसी में स्थित हैं, यह अनंत है, यह

अनंत परमात्मा का प्रतिक है, हमें आकाश की उपासना सिद्धि प्राप्त करनी है, परन्तु आकाश की भी अपनी सीमा है| नारद ने कहा की ऋषिवर आकाश की सीमा कैसे हो सकती है? यह तो सीमा रहित पूर्ण विस्तारित है, इसी में सब कुछ समाया है, शून्य के अलावा कोई बड़ा कैसे हो सकता है| सनत्कुमार ने कहा हे नारद! **स्मृति** आकाश से भी बड़ी हैं|

स्मृति(Memory): स्मृति तो महानतम तत्व है, आकाश में शब्द आते जाते हैं, परन्तु स्मृति ऐसा तत्व है जहां शब्द स्थिर होकर बैठ जाते हैं, स्मृति का आधार **स्मरण शक्ति** है, कल्पना कीजिये एक स्थान पर हजारों लोग बैठे हैं और स्मरण शक्ति का अभाव है तो वे एक दुसरे को पहचान नही सकते, न एक दुसरे को समझ सके, न एक दुसरे को सु सकेंगे अल्जाइमर की अवशता हो जायगी, परन्तु स्मरण शक्ति आते ही सब ठीक हो जायगा, यह स्मृति ही जग को चला रही है, लाखोवर्ष पूर्व हुई घटना भी आज जीवित है तो सिर्फ स्मृति की वजह से, स्मृति की वजह से हम भविष्य भी संजो सकते हैं|
ज्ञान-विज्ञान, जल-अन्न, आकाश, वाणी, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन इत्यादि सभी तो स्मृति के अधीन हैं, पूर्णत्व प्राप्त करने के लिए स्मृति की आराधना आवश्यक है| सनत्कुमार ने तब कहा स्मृति की भी एक सीमा है, नारद जी को परम आश्चर्य हुआ, हे

देव, अभी आपने स्मृति को सब कुछ बताया, गुरु, ब्रह्म, पर्मत्नमा, ईश्वर, देव, तीर्थ, सब हमारी स्मृति के भाव हैं तब ऋषिवर **स्मृति से बड़ा कौन हुआ?**
हे नारद **स्मृति से बड़ी आशा** है |

आशा (hope): स्मरण शक्ति का सम्बन्ध तो केवल भूतकाल से है, जैसा देखा, सुना, अनुभव किया वैसी स्मृति बनती गयी| परन्तु जब स्मृति के साथ आशा जुड़ जाती है तो वह भविष्य को मनुष्य से जोड़ देती है|
यदि आशा नही तो मनुष्य की स्वास तो चलेगी लेकिन जीवन वहीँ रुक जायगा, जहां आशा नही वहाँ निराशा है, और निराशा मनुष्य को जीते जी मार देती है|
नारद सोचो मनुष्य कर्म क्यों करता है, प्रत्येक मनुष्य कर्म आशा से ही करता है, आशा से प्रदीप्त होकर स्मृति मन्त्रों का स्मरण कराती है, आशा के आधार पर ही संतान, धन-धान्य सब की इच्छा उत्पन्न होती है, आशा के होने से ही इहलोक-परलोक प्राप्ति की कामना होती है| आशा के आधार पर ही जो है उससे अधिक प्राप्त करने की चाह होती है, सब कुछ आशा के अनुसार ही चल रहा है, आशा आधारभूत है परन्तु यह भी एक सीमा से बंधी है, अगर आशा की गति रुक गयी तो बहुत कुछ रुक जाता है परन्तु सब कुछ समाप्त नही होता| हे नारद अतः **आशा से भी बड़ा प्राण** है|

प्राण(breath of life):प्रत्येक मनुष्य में आशा किस लिए होती है प्राण के लिए, जीवन की चाह के लिए, जिजीविषा के लिए, अतः प्राण मूल **नाभितत्व** है| जिस प्रकार एक चक्र के मध्य एक बिंदु होता है और चरों ओर आरे लगे होते हैं, इसी तरह इस प्राण मूल तत्व के आरे; शिक्षा, वाणी, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न-जल, तेज, आकाश, स्मृति और आशा है| सब इस मूल चक्र के भाव हैं, इसमें से एक दो टूट सकते हैं, एक दुसरे में समाहित हो सकते हैं, परन्तु सबका उद्देश्य मूल तत्व को सुरक्षित रखना ही है, सब कुछ ज्ञान-विज्ञान, मन-संकल्प प्राण के लिए ही तो हैं|
यह शरीर, मन, बुद्धि थक सकते हैं, लेकिन प्राण कभी नही थकता, जल बल से शरीर कमजोर हो सकता है पर प्राण कभी कमजोर नही हो सकता, मन में आशा स्मृति ऊपर निचे होगी पर प्राण सदैव स्थिर रहेगा, यह प्राण ही आधार है इस प्राण से परे कुछ नही, प्राण ही माता है पिता है भ्राता आचार्य है गुरु है प्राण ही परब्रह्म है

यह प्राण तत्व ही तत्वमसि है, यह प्राण तत्व ही तत्वमसि है, यह प्राण तत्व ही तत्वमसि है ||
सब तत्वों का आधार प्राण है, जहां प्राण है वहाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है, तब नारद ने पूछा इस प्राणतत्व की पूजा कैसे करूँ ताकि तत्वमसि को जान सकूँ|

तब ऋषि ने कहा इसे पूजना नही है इसे न ही प्राप्त करना है, यह तो तुम्हारे अन्दर स्थित है विराजमान है, इसके ऊपर तो हमने जन्म जन्मान्तर के दोषों का अन्धकार बिछा रखा है, स पर स्मृति, आशा, मोह, शत्रुता, बल, घमंड, अभिमान का अन्धकार छाया है, यह ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण होते हुए भी कर्मगत दोष से शापित है, तुम स्वयम अपने प्राण तत्व तत्वमसि को न देखपाते हो न समझ पाते हो, और न ही अनुभव कर पाते हो, केवल शारीरिक क्रियायों द्वरा अपने को शरीर तक सीमित कर लेते हो, याद रखो इस देह में प्राण तत्व स्थापित है, इस देह में ज्ञान-विज्ञान, बल स्थापित है, उस प्राण तत्व को बार बार समझो, तब तुम अपने आप में शांत हो जावोगे, तुम्हे परमानन्द की प्राप्ति होगी, तुम्हारा परम तत्व **तत्वमसि** है हर क्षण अपने को जानना समझाना ही तत्वमसि है,

ॐ ह्रीं मम् प्राण देह रोम-प्रतिरोम चैतन्य जाग्रय ह्रीं ॐ नम:

अथार्थ हर समय अपने रोम प्रतिरोम के चैतन्य को जागृत रखो, फिर अपनी देह को जागृत रखो, अपने प्राण तत्व को जागृत करो, तब संसार की साड़ी कामनाएं इच्छाओं पर तुम्हारी विजय हो जायगी, जब तुम्हारे प्राणों का स्पंदन तुम्हे सुनाई देने लगेगा, तुम्हे परमब्रह्म की ध्वनि सुनाई देने लगेगी|

सूर्य को देखो एक सूर्य है उसमे सहस्त्र ज्योर्ति किरण निष्काषित होती हैं, वे सभी दिशाओं को आलोकित

करती हैं, वैसे ही प्राण सूर्य है, इसकी बढती घटती किरणें शिक्षा, वाणी, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञानं, बल, अन्न-जल, तेज, आकाश, स्मृति और आशा है| इन सब किरणों को प्राप्त करना है तो **तत्वमसि भाव** को प्राप्त करो.

इस **तत्वम्+ असि भाव** को निरंतर चैतन्य करते रहना है, इस ज्योत को सदैव प्रज्वलित रखना है, इसके लिए कर्म विचार, अन्न-जल, मन-बुद्धि से निरंतर आहुति देना है,|

अहं तत्वमसि, अहं प्राण तत्व असि, अहं सर्व देवाय असि, अहं आदित्याय असि, अहं सर्व तत्वम असि, अहम भाव तत्वम असि , आओ संकल्प करें हमें प्राण तत्व जागृत करना है |

तत्वमसि को हम कर्म मार्ग से समझे तो :जीवन जीने की तीन गति है जिसके द्वारा हम उस तू तक पहुँच सकते हैं ज्ञान, कर्म, भक्ति द्वारा, अभी तक हमने तत्वमसि को ज्ञान द्वारा पहचानने का प्रयत्न किया , आईये अब हम इसे कर्म द्वरा पहचानते है. जीवन में कई बार यह स्थिति आती है की हम यह प्रश्न करते हैं की मेरे साथ ऐसा क्यूँ हुआ, कई बार बहुत मेहनत करते है फिर भी सफलता नही मिलती कई बार किसी पर बहुत विश्वास करते हैं फिर भी धोखा होता है तब प्रश्न होता है की मेरे साथ क्यों मेरा भाग्य ऐसा क्यों, हमने तयारी कुछ की और

होता कुछ और है ऐसे में बार बार अंगुली उठती है वह अंगुली उठती है ऊपर की और (उस तुम की ओर जो परमात्मा है) यह किसकी मर्जी से हो रहा है, क्यूंकि हमने जाना है होई वही जो राम रची राखा, इन घटनाओं पर मन प्रश्न करता है की ऐसा कैसा भगवन है की यह सब हो रहा है, अरे भाई ईश्वर की मर्जी से दुनिया चलती तो दुनिया कैसी होती? कोई माँ अपने बेटे का बुरा चाहेगी, अगर इश्वर की मर्जी से चलती तो न डॉक्टर होते, न वकील, न जेल, कुछ गलत न होता, कोई बीमार न होता, दुनिया केवल परफेक्ट होती, चिये उस दुनिया को जो परमात्मा की मर्जी से चलती, अगर हम अपनी मर्जी से हम अपने बच्चे का भाग्य लिखें तो वह परफेक्ट होगा तब इश्वर तो सब का पिता है अतः वह गलत कैसे होगा अतः यह सब क्यूँ होता है, यह होता है हमारे कर्मो के फल से, अब जो कुछ हो रहा है वह उसकी मर्जी से नही बल्कि हमारे कर्मो के फल से अतः उत्तरदायी, कौन हम हुए, अब अंगुली किधर उठाएंगे, निश्चय ही यह अंगुली तुम्हारे ऊपर ही उठेगी, अब सोचिये कारण वही है अंगुली वही है पर उस तू पर उठाई है पर जब हम समझ जाते हमे ज्ञान हो जाता है की यह तू ही है तो अंगुली अब तुम अपने ऊपर उठाते हो, अतः तू (तुम्हारी आत्मा) और तुम (परमात्मा) एक

हो गए | अब तू और तुम में कोई भेद नही रहा | यह सब भेद कैसे दूर हुआ अपनी सोच बदलने से,. नियति, भाग्य, सब कर्म बंधन से जुड़े हैं, भाग्य वह है तो कर्म तू है भाग्य और कर्म को एकाकार करने से ही भेद दूर होगा. हम पूजा करते हैं की यह समस्या है पूजा करेंगे तो सब ठीक हो जायगा, पर क्या पूजा करने से भाग्य बदल जायगा, नही पूजा करने से हमारे मन में सकारात्मक सोच आती है की अब तो पूजा करवा ली अब सब ठीक हो जायगा, और सब ठीक होने लगता है, क्यूँ? क्यूंकि तुमने उस तुम को जान लिया और अपने वाले तू का महत्त्व पहचान लिया, तुम्हे ही अपने को जान कर "तू" बड़ा करना है यही मूल उद्देश्य है तत्वमसि का | त् (तू तुम्हारे कर्म) त्वम् (तुम्हारा भाग्य जो परमात्मा से संचालित है) असि (है)

भक्ति योग..

कलयुग में सर्वाधिक भक्ति का प्रचार है, इतना तो और किसी युग में नही हुआ, जहां देखिये वहीँ पूजा, हवन, भागवत कथा, रामायण कथा, भक्तमाल कथा देखने सुनने को मिलती है, कहा जाता है की वृन्दावन में किसी भी छत से पत्थर फेंको किसी न किसी भागवत कथा पर गिरेगी. भागवत में एक प्रसंग आता है कि नारद मुनि गंगा के तट पर देखते

हैं की एक युवा स्त्री बैठी रो रही है और दो वृद्ध उसके गोद में मरणासन्न अवस्था में हैं, नारद जी पूछते हैं की हे देवी, तुम कौन हो और ये वृद्ध कौन हैं, तब वह बतलाती है कि मैं भक्ति हूँ और ये जो दो वृद्ध पड़े हैं वे मेरे पुत्र हैं ज्ञान और वैराग्य, कहने का अर्थ है की कलयुग में भक्ति युवा हो कर सबको लुभा रही है, परन्तु भक्ति से उत्पन्न उसके पुत्र ज्ञान और वैराग्य का बिलकुल नाम समाप्त हो चूका है, इस को बचाने हेतु ही भक्ति द्वारा भागवत कथा का ज्ञान दिया गया ताकि ज्ञान और वैराग्य बच सके, कथा में तो ज्ञान अर्जित हुआ पर वास्तव में हुआ क्या, आज भागवत कथा भी केवल नाच गाना का पर्याय बन कर रह गयी है, व्यक्ति पदार्थवाद में इतना ज्यादा घिर चूका है की मैं और मै से बाहर नही निकल पाता और यह मैं ही उसे दुखी करता है क्यूंकि यह मैं ही उसकी सोच हो गयी हैं, जब तक तू इस मैं से निकल कर विशाल तुम में नही विलीन होते तब तक अद्वेत को नही जान सकोगे, द्वेत में तो तू तू है और वो वो है, पर अद्वेत में तू ही वो (तुम) है. तत्वमसि| मीरा का एक प्रसिद्द भजन है जिसे प्रायः सभी ने सुना होगा जिसे न जाने कितनी रागों में कितने लोगो ने गाया है,

"मैं सांवरे के रंग राची"
साजि सिंगार बांधि पग घुंघरू,
लोक-लाज तजि नाची||

तो सांवरे के रंग राची।
मैं तो सांवरे .....
उण बिन सब जग खारो लागत,
और बात सब कांची।
मीरा श्रीगिरधरन लालसूँ,
भगति रसीली जांची॥
मैं तो सांवरे ...

इस भजन को पढ़े या गुनगुनाये या गुने हमे यह पता चलेगा की उस परमात्मा के प्रति सच्ची समर्पण की भावना या सच्ची आस्था क्या है, कैसे मीरा ने उस संवारे को ह्रदय ही नही बल्कि रोम रोम में बसा कर एकाकार हो गयी | यह है सच्चा तत्वमसि भाव या तत्वमसि तत्व. संवारा वह पर पिता परमातम है जिसके द्वार हम सब उत्पन्न हुए हैं जिसके हम अंश हैं, जब तक हम उस के रंग में रंग नही जाते , जब तक उसका रंग और हमारा रंग एक नही हो जाता तब तक हम भक्ति नही ढकोसला कर रहे होते हैं, पाखंड कर रहे होते अं और यही हो रहा है, आज के बाबाओं का चलन मात्र यही दर्शाता है, उनमे तत्वमसि का भाव न होकर मैं का भाव है, अहम का भाव है. जब तक हमारी सोच उस सोच में समाहित नही होगी हम सदा दुखी होते रहेंगे, हम एक सत्संग में जाते हैं, जमीं पर बैठे हैं और सत्संग के प्रवचन का आनंद ले रहे हैं बहुत खुश हैं, सोचते हैं की यह प्रवचन कितना सुख दे रहा है, फिर पीछे घूम कर

देखते हैं की कोई तो कुर्सी पर बैठा है बस हमारी सोच को एक झटका लगता है कि अरे वो कुर्सी में और मैं जमीन पर बस सारा सुख समाप्त हम पूरा जुगाड़ लगाते हैं की हमें भी कुर्सी मिल जाय, मिल गयी फिर देखते हैं कि तब तक वो कुर्सी से उठ कर सोफे पर विराजमान है, फिर वही दुःख, अर्थ हमें यह सुख से दूर रखने का कारण सुविधाएँ नही बल्कि हमारी सोच है, जब यह सोच बदल जायगी और यह सोच तुम(परमात्मा) की सोच में मिल जायगी तजब हम सांवरे के रंग में रंग जायेंगे तो फिर अनंत सुख मिल जायगा, मेरा मन तो जहाज को पंछी उडी उडी पुन जहाज पर आये स्थिति से उअर उठ कर मेरा मन अनंत सुख पावे की स्थिति में आ जायगा |

गीता में १२वा अध्याय भक्ति योग के नाम से जाना जाता है जिसमे में अर्जुन ने पूछा, 'जो भक्त आपके प्रेम में डूबे रहकर आपके सगुण रूप की पूजा करते हैं, या फिर जो शाश्वत, अविनाशी और निराकार की पूजा करते हैं, इन दोनों में से कौन अधिक श्रेष्ठ है।' भगवान श्रीकृष्ण बोले, 'जो लोग मुझमें अपने मन को एकाग्र करके निरंतर मेरी पूजा और भक्ति करते हैं तथा खुद को मुझे समर्पित कर देते हैं, वे मेरे परम भक्त होते हैं। लेकिन जो लोग मन-बुद्धि से परे सर्वव्यापी, निराकार की आराधना करते हैं, वे भी मुझे प्राप्त कर लेते हैं। मगर जो लोग मेरे निराकार स्वरूप में आसक्त होते हैं, उन्हें बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ता है क्योंकि सशरीर जीव के लिए

उस रास्ते पर चलना बहुत कठिन है। मगर हे अर्जुन, जो लोग पूरे विश्वास के साथ अपने मन को मुझमें लगाते हैं और मेरी भक्ति में लीन होते हैं, उन्हें मैं जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त कर देता हूं।'

जो अव्यक्त और निराकार होता है, उसका आप अनुभव नहीं कर सकते। उसमें आप सिर्फ विश्वास कर सकते हैं। चाहे आप निराकार में विश्वास करते हों, फिर भी जो नहीं है, उसके प्रति गहरी भक्ति और प्रेम को विकसित करते हुए उसे बनाए रखना आपके लिए बहुत मुश्किल होगा। जो है, उसकी भक्ति करना आपके लिए ज्यादा आसान है। इसके साथ ही, वह कहते हैं, 'अगर कोई निरंतर निराकार की भक्ति कर सकता है, तो वह भी मुझे पा सकता है।' जब वह 'मैं' कहते हैं, तो वह किसी व्यक्ति के रूप में अपनी बात नहीं करते हैं, वह उस आयाम की बात करते हैं जिसमें साकार और निराकार दोनों शामिल होते हैं। 'यदि कोई वह रास्ता अपनाता है, तो वह भी मुझे प्राप्त कर सकता है मगर उसे बहुत मुश्किलें झेलनी पड़ेंगी।' क्योंकि जो चीज नहीं है, उसमें मन लगाना आपके लिए मुश्किल है। अपनी भक्ति में लगातार स्थिर होने के लिए आपको एक आकार, एक रूप, एक नाम की जरूरत पड़ती है, जिससे आप जुड़ सकें।

'सशरीर जीव के लिए उस रास्ते पर चलना कठिन है।' इसका मतलब है कि अगर आप शरीर और बुद्धि-विवेक युक्त जीव की तरह, अस्तित्व के एक

निराकार आयाम की आराधना करते हैं, तो आपकी बुद्धि रोज आपसे पूछेगी कि आप किसी मंजिल की तरफ बढ़ भी रहे हैं या यूं ही समय बर्बाद कर रहे हैं। जो शरीरहीन जीव हैं, उनके लिए संभावना मौजूद है क्योंकि उन्हें अपनी बुद्धि के साथ तर्क-वितर्क नहीं करना पड़ता – वे अपने झुकाव और प्रवृत्ति के मुताबिक चलते हैं। अगर वे आध्यात्म की तरफ झुके हुए हैं, तो वे आम तौर पर निराकार की ओर उन्मुख हो जाते हैं। यह उनका सोचा-समझा चयन नहीं होता, बल्कि उनका झुकाव होता है। इसलिए, अशरीरी जीवों के लिए यह ज्यादा उपयुक्त मार्ग है क्योंकि वे पंचतत्वों की सीमाओं से परे होते हैं, बुद्धि और विवेक की सीमाओं से परे होते हैं।

मगर किसी सशरीर जीव के लिए अपनी भावनाओं को किसी ऐसी चीज में लगाना बेहतर होता है, जिससे आप जुड़ सकें। इसीलिए भगवान कहते हैं कि एक जीवित व्यक्ति के रूप में उनका ध्यान करने पर उन्हें प्राप्त करना ज्यादा आसान है। निराकार की खोज आपके भीतर एक दार्शनिक नाटक बन सकता है, जिसमें आप बिना आगे बढ़े वहीं के वहीं अटके रह सकते हैं।

'मगर हे अर्जुन, जो लोग पूरे विश्वास के साथ अपने मन को मुझमें लगाते हैं और मेरी भक्ति में लीन होते हैं, उन्हें मैं जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति दे देता हूं।' यह सिर्फ कृष्ण नें नहीं कहा है। हर पूर्ण आत्मज्ञानी जीव किसी न किसी रूप में यही कहता

है। जब लोग मुझसे इस तरह के सवाल पूछते हैं कि 'क्या मुझे इस जन्म में मुक्ति मिलेगी?' तो मैं उनसे कहता हूं, 'आप सिर्फ मेरी बस में चढ़ जाइए। आपको ड्राइव नहीं करना पड़ेगा, आपको सिर्फ बस में बैठना है।' मगर आपका अहं ऐसा है, कि आप बस को चलाना भी चाहते हैं। बहुत से लोग बैकसीट में बैठकर ड्राइविंग करते हैं। आम तौर पर वे सिर्फ ब्रेक लगाते हैं।
भागवत में दसवा स्कंध भक्ति की गाथा है, जिसमे कृष्ण चरित का विस्तृत वर्णन है, दसवे स्कंध में भी खास पांच अध्याय जिसे पंचरास कहा गया है वे भक्ति और ज्ञान के मिश्रण की पराकाष्ठ हैं, जिसमे रास के माध्यम से बताया गया है कि कैसे भक्ति करके ज्ञान प्राप्त होता है और ज्कैसे आत्मा रूपी गोपी "गो इन्द्रिय को कहते है, पी अर्थ संयम करना" को परमात्मा में एकाकार होकर सम्पूर्ण मुमुक्षु की प्राप्ति होती है "यः जीवनं दुःखम् इति सम्यक् अवगच्छति सः एव मुमुक्षुत्वं प्राप्नोति |" इन पांच अध्याय में खास कर गोपी गीत का हर श्लोक और हर श्लोक का हर शब्द अध्यात्म की उच्च स्थिति को दर्शाता है, जहां गोपियाँ कृष्ण को पति (स्वामी) मान कर उनको बुलाती है. व्यक्ति की हर इन्द्रियों का स्वामी वह ही है तुम तो दैहिक आत्मिक इन्द्रिय मात्र हो और वह तुम तुम्हारा स्वामी, जब तुम यह जान लोगे की उसका पूजन उसमे खो जाना सम्पूर्ण चेतना का जागृत हो जाना है.

"रास पंचाध्यायी" के पाँच अध्यायों का संक्षेप में सार इस प्रकार है - शारदीय पूर्णिमा की रात्रि के समय भगवान श्रीकृष्ण के मन में गोपियों के साथ रसमयी रासक्रीड़ा करने का संकल्प हुआ। उन्होंने अपनी मनोहारी कामबीज वंशी की ध्वनि बजाई। वंशी की मोहक ध्वनि सुनते ही गोपियाँ अपना समस्त क्रियाव्यापार त्याग कर रास प्रदेश में कृष्ण के पास पहुँच गई। श्री कृष्ण ने उन्हें पहले तो समझा-बुझाकर अपने घर वापस जाने को कहा, किंतु गोपियाँ अपने निश्चय पर आरूढ़ रहीं और रासक्रीड़ा के लिए कृष्ण से आग्रह करती रहीं। जब गोपियाँ अपने पर लौटने को उद्यत न हुई तो श्री कृष्ण ने आनंदपुलकित मन से मडंलाकार स्थिति होकर उनके साथ रासलीला प्रारंभ की। इस रासलीला को वै दिव्य क्रीड़ा माना जाता हैं और इसका आध्यात्मिक अर्थ है कि श्री कृष्ण चिदानंदघन दिव्य शरीर हैं, गोपियाँ दिव्य जगत् की भगवान की अतंरंग शक्तियाँ हैं। उनकी लीला भावभूमि की है स्थूल शरीर और मन से उसका कोई संबंध नहीं। रास पंचाध्यायी पर टीका लिखनेवाले श्री वल्लभाचार्य, श्री श्रीधर स्वामी, श्री जीय गोस्वामी आदि ने इस आध्यात्मिक तत्व की व्याख्या बड़े विस्तार से की है। श्री करपात्री जी ने सिर्फ गोपीगीत का भाष्य कई हज़ार पृष्ठों में किया है उनके अनुसार "भगवान श्रीकृष्णचंन्द्र का स्वरूप मायिक किंवा पंचभौतिक नहीं है तथापि शुद्ध यच्चिदानन्द घनरूप भी नहीं

है, अपितु शुद्ध रसात्मक है। कान्ता-वांछित चैतन्य, सच्चिदानन्द परब्रह्म का अवस्थांतर ही रस है एतावता, रस को ब्रह्म-सदोहर कहा गया है। ब्रह्म एकरस है परन्तु पानक-न्यायतः उसमें विभिन्न रसों का सम्मिश्रण है। अस्तु, रसात्मक में आलंबन, उद्दीपन, संचार आदि विभिन्न विभावों की विस्फूर्ति होना अनिवार्य है। यथार्थतः ये विभिन्न भाव व्यभिचारी हैं क्योंकि वे रस का संचार कर लुप्त हो जाते हैं; इनकी विशेषता यही है कि इनके द्वारा रस की चमत्कृति अभिव्यक्त होती है। शास्त्रानुसार श्रृंगार-रस ही अंगो रस है, अन्य सब रस अंग हैं अतः श्रृंगार-रस ही प्रमुख रस है; श्रृंगार- रस भी दो प्रकार का है, संयोग-श्रृंगार तथा विप्रलम्भ-श्रृंगार। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का विग्रह निखिल-रसामृत-मूर्ति, सम्पूर्ण रसों का सार-तत्त्व है अतः उनमें यथा-समय विभिन्न भाव सांयोपांग अभिव्यक्त होते हैं।

कहने का तात्पर्य है की भक्ति के विभिन्न भाष्य एवं आयामों में यही निष्कर्ष निकलता है कि शुद्ध भक्ति द्वारा शीघ्र परम तत्व तक पहुंचा जा सकता है, अगर उसमे आडम्बर न हो, पाखंड न हो, दिखावा न हो, छल प्रपंच न हो, मन की शुद्धि भक्ति का प्रवेश द्वार है, और यह द्वार अद्वैत के तत्वमसि का सम्पूर्ण निर्वहन है. यूँ तो विषय इतना बड़ा है की केवल भक्ति के द्वारा तत्वमसि पर जितना लिखा जाय कम होगा पर संक्षेप में सुर, तुलसी, मीरा,

रैदास, आदि ने विशुद्ध भक्ति द्वारा ही उस परम पिता को प्राप्त किया और तत्वमसि को समझा|

निष्कर्ष एवं समापन –तत्वमसि

तुम प्रायः संकोच करते हो किसी की खुलेमन से वंदना करना चाहते हो उस परम तुम में स्वयं को विलीन कर देना चाहते हो। पर संकोच आड़े आजाता है, किसी संत से सुना “सबसे बड़ा रोग, क्या कहेंगे लोग“ लोगों की इस जकड़न से बाहर न निकल कर तू जब तक उस तुम में नही खो जाते, तत्वमसि के प्राणतत्व को नहीं पा सकते। प्राण तत्व जो सबसे सशक्त है उससे बड़ा कोई नही उसे प्राप्त करने के लिए आप चाहे ज्ञान मार्ग के द्वारा पाएं या कर्म मार्ग के द्वारा या भक्ति मार्ग के द्वारा।
भागवत में दसवा स्कंध भक्ति की गाथा है, जिसमे कृष्ण चरित का विस्तृत वर्णन है, दसवे स्कंध में भी खास पांच अध्याय जिसे पंचरास कहा गया है वे भक्ति और ज्ञान मिश्रण की पराकाष्ठा हैं, जिसमे रास के माध्यम से भक्ति के चरम को ज्ञान में परिवर्तित किया है, कैसे आत्मा रूपी गोपी “गो इन्द्रिय को कहते है, पी अर्थ संयम करना” को परमात्मा में एकाकार होकर सम्पूर्ण मुमुक्षु की प्राप्ति होती है **“यः जीवनं दुःखम् इति सम्यक् अवगच्छति सः एव मुमुक्षुत्वं प्राप्नोति |”**
प्रत्येक मनुष्य में आशा किस लिए होती है प्राण के लिए, जीवन की चाह के लिए, जिजीविषा के लिए,

अतः प्राण मूल नाभितत्व है| जिस प्रकार एक चक्र के मध्य एक बिंदु होता है और चारों ओर तीर लगे होते हैं, इसी तरह इस प्राण मूल तत्व के तीर; शिक्षा, वाणी, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न-जल, तेज, आकाश, स्मृति और आशा है| (नारद एवं सनत्कुमार की वार्ता से उधृत) सब इस मूल चक्र के भाव हैं, इसमें से एक दो टूट सकते हैं, एक दुसरे में समाहित हो सकते हैं, परन्तु सबका उद्देश्य मूल तत्व को सुरक्षित रखना ही है, सब कुछ ज्ञान-विज्ञान, मन-संकल्प प्राण के लिए ही तो है|

यह शरीर, मन, बुद्धि थक सकते हैं, लेकिन प्राण कभी नही थकता, जल बल से शरीर कमजोर हो सकता है पर प्राण कभी कमजोर नही हो सकता, यह प्राण तत्व ही तत्वमसि है, यह प्राण तत्व ही तत्वमसि है, यह प्राण तत्व ही तत्वमसि है ||

आईये हम संकोच को छोड़ लोग क्या कहेंगे छोड़ उस परम प्राण तत्व में अपने तू को तुम से मिलने का प्रयत्न करें, समय भी अनुकूल है, जिस नौका पार सवार हैं हम वह भी मजबूत है, हवा की दिशा भी सही है और सागर भी शांत है आईये हम, आप, तू, तुम इस ज्ञान रूपी, कर्म रूपी, भक्ति रूपी नौका को खै देवे विलंब न करे अंत तत्वमसि में ही मिलेगा यही परम सत्य है और कुछ भी इससे अलग नही। यही तरल है, यही सघन है, यही साधन है, यही साध्य है।

परिशिष्ट – तत्त्वमसि : कुछ और विमर्श

इस महावाक्य की महत्ता को समझने हेतु यदि हम शंकराचार्यकृत भाष्य का स्मरण करें, तो छान्दोग्योपनिषद् (6.8–6.16) में उद्दालक और श्वेतकेतु के संवाद को ही मूलाधार माना जाता है। वहाँ उद्दालक बारंबार "तत्त्वमसि श्वेतकेतो" कहकर यह संकेत करते हैं कि 'त्वम्' (जीव) और 'तत्' (ब्रह्म) में जो भिन्नता प्रतीत होती है, वह केवल उपाधियों के कारण है — मूलतः दोनों एक ही चैतन्य सत्ता हैं।

शंकराचार्य ने अपने भाष्य में स्पष्ट किया है कि "तत्त्वमसि" में प्रयुक्त 'तत्' और 'त्वम्' का "मुख्यार्थ" (शाब्दिक अर्थ) भिन्न है — एक ईश्वर है, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान; दूसरा जीव है, सीमित, अज्ञानी। किंतु शाब्दिक अर्थ विरोध करने से शाब्दार्थ में विरोध उत्पन्न होता है, और महावाक्य निष्फल हो जाता है। इसलिए यहाँ "लक्षणा" (लक्ष्यार्थ की विधि) का प्रयोग अनिवार्य है। 'तत्' और 'त्वम्' दोनों के ही उपाधियों को त्यागकर इनका सार — शुद्ध चैतन्य — ग्रहण किया जाता है। यही "तटस्थ-लक्षणा" (भगत्यागलक्षणा) है।

उदाहरणस्वरूप — जैसे "अयं देवदत्तः" कहकर वर्तमान में दिखाई दे रहा व्यक्ति उस अतीत के व्यक्ति से अभिन्न बताया जाता है, वैसे ही "तत्त्वमसि" भी बताता है कि तात्त्विक दृष्टि से वह ब्रह्म ही तू है।

तत्त्वमसि की उपलब्धि केवल बौद्धिक निर्णय नहीं, अपितु गहन आत्मानुभव है। यह ज्ञान अंततः “अहं ब्रह्मास्मि” के सहज निष्कर्ष में परिवर्तित होता है। 'तत्वमसि' की शिक्षा बाह्य निर्देश है, किन्तु 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध आन्तरिक निष्कर्ष है।

यह भी आवश्यक है कि यह ज्ञान किसी संन्यासी का ही एकाधिकार न समझा जाए। याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद इसका प्रमाण है कि यह ब्रह्मविद्या गृहस्थ जीवन में भी साध्य है, यदि जिज्ञासा प्रबल हो और गुरु उपयुक्त मार्गदर्शन दे।

अतः यह महावाक्य न केवल दार्शनिक अवधारणा है, बल्कि यह आत्मानुभव की दिशा में एक अमोघ संकेत है। उपनिषदों के हृदय-स्वरूप इस वाक्य का अर्थ यदि श्रवण, मनन और निदिध्यासन से हृदय में स्थिर हो जाए, तो शेष कुछ जानना शेष नहीं रहता — केवल मौन शेष रह जाता है।

परिशिष्ट द्वितीय — 'तत्त्वमसि' की अद्वैत-मीमांसा में गहराई

1. शंकर भाष्य के अनुसार 'लक्ष्यार्थ' (लक्षणा):

तत्त्वमसि — यह उपदेश रूप वाक्य छांदोग्य उपनिषद् (6.8.7) का है। शंकराचार्य इसकी व्याख्या करते हुए बताते हैं कि यहाँ 'तत्त्व' (वह ब्रह्म) और 'त्वम्' (तुम, शिष्य) — दोनों के प्रत्यक्ष अर्थ (वाच्यार्थ) में भिन्नता है: 'तत्त्व' सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, निर्गुण ब्रह्म है; जबकि 'त्वम्' देह, इन्द्रिय और मन से युक्त जीव प्रतीत होता है।

इसलिए यहाँ वाच्यार्थ नहीं, बल्कि 'लक्ष्यार्थ' (व्यंजित अभिप्राय) ग्रहण किया जाता है — जो उपाधियों (dehādya-upādhi) को त्याग कर सच्चिदानंद स्वरूप की पहचान कराता है। जैसे—

🪔 दृष्टान्त: "तुम वही हो" — यह कथन यदि किसी बाल्यकाल के मित्र को देखकर कहा जाए, तो उसका 'वही' रूप तो परिवर्तित है, परंतु उसका सार वही है। इसी प्रकार ब्रह्म और जीव में रूपतः भिन्नता, परंतु आत्मतः अभिन्नता होती है।

2. अद्वैत में ‘तत्त्वमसि’ का स्थान:

आदिशंकराचार्य ने तत्त्वमसि को श्रवण, मनन और निदिध्यासन का आधारवाक्य बताया है। उन्होंने इसे महावाक्य कहा है — न केवल क्योंकि यह उपनिषद् में आता है, बल्कि इसलिए कि इसमें जीव-ब्रह्म की ऐक्य का उद्घोष है।

⛩ श्रवण: “शब्द से ब्रह्म का बोध” — गुरु के वचन के द्वारा

🪷 मनन: “तर्क से संशयों का निवारण” — जैसे ब्रह्म एक है, जीव अनेक प्रतीत होते हैं — फिर कैसे तत्त्वमसि?

🕉 निदिध्यासन: “तत्स्वरूप में स्थित रहना” — निरंतर ध्यान कि "मैं शरीर नहीं, न मन, न इन्द्रिय — मैं चैतन्यस्वरूप ब्रह्म ही हूँ।"

3. व्यवहारिक सत्य और परमार्थ सत्य:

शंकराचार्य दो सत्यों की बात करते हैं —
(१) व्यवहारिक (vyāvahārika): जहाँ जीव, ब्रह्म, जगत अलग-अलग प्रतीत होते हैं।
(२) परमार्थिक (pāramārthika): जहाँ केवल ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या और जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है।

दृष्टान्त: रस्सी में साँप की भ्रान्ति — साँप प्रतीत होता है (व्यवहार), परंतु वास्तव में केवल रस्सी है (परमार्थ)। तत्त्वमसि वही उदघोष करता है: "तू ब्रह्म है, न कि यह देह-मन का आरोपित रूप।"

4. अन्य महावाक्यों से साम्य और भिन्नता:

'अहं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यक उपनिषद्), 'अयमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक्य उपनिषद्), 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (केन उपनिषद्) — ये चार महावाक्य एक ही सत्य के चार कोण हैं।

'तत्त्वमसि' — उपदेशात्मक (गुरु से शिष्य की ओर)।
'अहं ब्रह्मास्मि' — आत्मसाक्षात्कार के क्षण में स्वयं की अनुभूति।

🌸 ‘अयमात्मा ब्रह्म’ — निकटस्थ आत्मा की ब्रह्मत्व घोषणा।
🌸 ‘प्रज्ञानं ब्रह्म’ — ब्रह्म की अनुभूति-सत्ता का दार्शनिक निष्कर्ष।

5. अद्वैत बोध का आधुनिक अर्थ (संक्षेप में):

आज के युग में जहाँ व्यक्ति अति-भौतिकता, भय, संघर्ष और हीनभावना से ग्रस्त है, वहाँ ‘तत्त्वमसि’ महावाक्य उसे यह स्मरण दिलाता है कि —
❝ तू सीमित नहीं, तू आत्मा है। तुझमें वही दिव्यता है जो समस्त ब्रह्मांड में है। ❞
यह केवल धार्मिक कथन नहीं, अस्तित्व का उद्घाटन है।

—

उपसंहार:

"तत्त्वमसि इत्येतद् महावाक्यम् आत्मब्रह्मैक्यस्य परमप्रकाशकं दीप इव।
श्रवणादिना तस्य न केवल ज्ञानं, किंतु अनुभवनं च सिद्ध्यति।"

(= "'तत्त्वमसि' यह महावाक्य आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य का परमप्रकाशक दीपक है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा न केवल ज्ञान, अपितु अनुभव भी सिद्ध होता है।")